उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो।

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—२ नवम्बर-दिसम्बर—१९८३ अंक ११-१२

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

संपादकीय कार्यालय :

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| षड् वार्षिक | १०० रु० |
| त्रैवार्षिक | ५५ रु० |
| वार्षिक | २० रु० |
| एक प्रति | २ रु० |

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजने की कृपा करें।

## श्री सारदा ने कहा है

( १ )

जिसने भी सच्चे मन से ईश्वर को एक भी बार पुकारा है उसे कोई भय नहीं है। उन्हें निरन्तर पुकारते रहने से प्रेमाभक्ति की प्राप्ति होती है। बेटा, यह प्रेम ही आध्यात्मिक जीवन का सार है। वृन्दावन की गोपियों ने इसे प्राप्त किया था। वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त संसार की किसी भी वस्तु को नहीं जानती थीं।

२

वह जो पानी देखते हो, जिसका स्वभाव ही नीचे की ओर जाना है, सूर्य-किरण उसे भी आकाश की ओर खींच लेती है। इसी प्रकार मन की गति भी स्वभाव से निम्नगामी है—भोग की ओर है। भगवत्कृपा से वही मन ऊर्ध्वगामी हो जाता है।

३

अपने हृदय की गहराई से ईश्वर के नाम का जप करो और पूरी श्रद्धा से ठाकुर के शरणागत हो जाओ। इस बात की चिन्ता मत करो कि तुम्हारा मन इधर-उधर की चीजों में कैसे उलझा हुआ है। तुम अध्यात्म-पथ पर आगे बढ़ रहे हो अथवा नहीं, यह सब गुनने-विचारने में समय मत गँवाओ। अपनी प्रगति का स्वयं मूल्यांकण करना अहंकार है। अपने गुरु और इष्ट की कृपा पर विश्वास रखो।

४

सब लोग बड़े दुःख से कहते हैं, "संसार में कितना कष्ट है। हमने ईश्वर की इतनी प्रार्थना की है फिर भी दुःखों का अन्त नहीं है।" किन्तु दुःख तो ईश्वर का वरदान है। यह उनकी करुणा का प्रतीक है।

# श्रीसारदा-वन्दना

—डॉ० केदारनाथ लाभ

दोहा— माता श्यामासुन्दरी, रामचन्द्र पितु गेह।
जगदम्बा भवतारिणी, उतरीं ले नव देह ॥१
पौष कृष्ण शुभ सप्तमी, दिन पुनीत गुरुवार।
हुआ सारदा का परम, करुणामय अवतार ॥२

छंद— जयरामबाटी पुण्य-घाटी सहज सुकृति सहोदरा
चिर मनोभावन भूमि पावन शस्य श्यामल उर्वरा।
मंगल-विधात्री शान्ति-दात्री लोक-शोक-तिमिर-हरा
अवतरीं माता दिव्यगाता विमल बुद्धि ऋतम्भरा ॥

दोहा— गूँज उठी शत शंखध्वनि, गूँजे सुललित गान।
नत वन्दन करने लगे, सुर-मुनि वेद-पुराण ॥३

चौपाई— जय जय माँ सारदा सुनीता। विश्व-वन्दिता परम पुनीता ॥
जय श्यामासुन्दरी किशोरी। रामचन्द्र-दुहिता अति भोरी ॥
जय जय भुवन विमोहिनि माता। जय शुचि रुचि मुख मंगल दाता ॥
जय करुणा-वरुणा कल्याणी। जय संतति-वत्सला अमानी ॥
तुम ही उमा जानकी राधा। त्याग याग तप प्रीति अगाधा ॥
तुम ही ज्ञान कर्म की भाषा। अचल भक्ति की तुम परिभाषा ॥
पावन तन मन जीवन गंगा। निर्मल छवि रवि-रश्मि अभंगा ॥
रामकृष्ण गत प्राण तुम्हारे। रोम-रोम तन्नाम उचारे ॥

सोरठा— हरने को भू-भार, तुम आयी संसार में।
लीला परम अपार, कौन तुम्हारी गा सके ॥४

छंद— अक्षय सुहागिनि ! चिर विरागिनि ! हे अमर वरदायिनी !
माँ सारदेश्वरि ! हे शुभेश्वरि ! भक्ति दो अनपायिनी ॥
कर दो विमल मन अमल जीवन देवि यह वर दो मुझे।
अपनी शरण में अंत क्षण में अभय कर धर लो मुझे ॥

दोहा— तारक शरत् नरेन्द्र शशि, काली हरि राखाल।
स्नेह-सुधा तव पान कर, सब हो गये निहाल ॥५
माँ दो निज पद-पद्म में, नित अखंड विश्वास।
कटें बंध-भव उर-तिमिर, मिटे ताप-त्रय-त्रास ॥६

सम्पादकीय सम्बोधन

# नारीत्व का चरम आदर्श : माँ सारदा

**मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,**

वर्तमान युग में जगन्माता महाकाली स्वयं माँ सारदा के रूप में अवतरित हुई थीं—यह अब सामान्य लोगों की भी धारणा हो गयी है। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने उनके सम्बन्ध में कहा था—'वह क्या जो-सो है? वह है मेरी शक्ति। वह है सारदा—सरस्वती—ज्ञान देने आयी है।' वस्तुतः जब परम ब्रह्म शरीर धारण कर लीला करने आते हैं—धर्म की ग्लानि मिटाकर सद्धर्म के आदर्श की स्थापना करने के लिए—तब उनके साथ ही उनकी शक्ति भी अवतरित होती है और उनके लीला पार्षद भी आते हैं—देह-धारण कर। इसीसे श्रीरामकृष्ण के साथ उनकी नित्य लीला-सहधर्मिणी माँ सारदा का भी भूतल पर अवतरण हुआ, श्रीरामकृष्ण की लीला में सहकार करने।

लीला और सामान्य कर्म में अन्तर होता है। सामान्य व्यक्ति के कर्म के मूल में कोई आसक्ति, कोई कामना होती है। इसीसे उसके कर्म की परिसमाप्ति सुख या दुःख में होती है। लेकिन अवतार-पुरुष के कर्म में उसकी अपनी कोई स्पृहा, कोई कामना या कोई आसक्ति नहीं होती। वह कर्म कर्म के लिए करता है—लोक मंगल के लिए, धर्म की स्थापना के लिए, एक आदर्श के सृजन के लिए। इसीसे उसके कर्म की परिसमाप्ति सुख या दुःख में न होकर परम आनन्द में होती है। लीला के मूल में ही आनन्द का विधान है, रस का अनुदान है, लोक-कल्याण और जन-रंजन का वितान है। इसे यों समझें। आप जब चलते हैं तब आपके साथ आपकी छाया भी चलती है। आप दौड़ते हैं तो छाया भी दौड़ती है। आप बैठते हैं तो छाया भी आपकी बैठ जाती है। आप लेट जाते हैं तो छाया भी आपकी लेट जाती है। लेकिन चलने या दौड़ने में आप थक जाते हैं, आपकी छाया नहीं थकती। आपको विश्राम की आवश्यकता होती है, आपकी छाया को नहीं। ऐसा क्यों होता है? इसलिए, कि आपकी क्रिया के मूल में कामना है। कामना थकाती ही है। लेकिन छाया की अपनी कोई कामना नहीं। वह तो मात्र चलने या दौड़ने की लीला कर रही है, अभिनय कर रही है। इसीसे शिव और पार्वती, राम और सीता, कृष्ण और राधा लीला करते हैं। वे कर्म करते हुए भी अकर्म की स्थिति में रहते हैं। स्वभावतः कर्म-फल उन्हें व्यापता नहीं। हाँ, उनके कर्म से समाज में आदर्श का, जीवनाचार का, धर्म का एक मानदंड स्थिर हो जाता है। श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ सारदा का भी अवतरण हुआ था—लीला के द्वारा धर्म-स्थापन और लोक-कल्याण के लिए।

माँ सारदा की लीला का क्या रहस्य था? क्या प्रयोजन था? इसे हमें समझना चाहिए।

श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा के आविर्भाव के पूर्व जितने भी अवतार नर-रूप में हुए हैं उनमें अधिकांश राज-परिवार में उत्पन्न हुए। उनका परिवेश राजकीय आडम्बर से परिपूर्ण था। किन्तु श्रीरामकृष्ण और माँ सारदा दोनों ने ही परम दरिद्र परिवार में जन्म-ग्रहण किया था। उनकी कोई विशेष शिक्षा-दीक्षा (आधुनिक अर्थ में) नहीं हुई। आमोद-प्रमोद में उनका बचपन नहीं बीता, हास-विलास में उनका यौवन नहीं कटा। इसके विपरीत उन्हें अत्यंत कष्टों का सामना करना पड़ा। माँ सारदा को अपने बचपन में गर्दन भर पानी में घुस कर गायों के लिए घास काटनी पड़ती थी। रूई बीन

कर, जनेऊ काटकर उसके पैसे से भरण-पोषण करना पड़ता था। छुटपन से ही रसोई पकानी पड़ती थी और घर के सारे काम-काज देखने पड़ते थे। क्यों ? माँ दिखाना चाहती थीं कि दिव्यता और उच्चता धनिकों की ही सम्पत्ति नहीं है। एक दीन—दरिद्र परिवार की संतान भी अपने श्रम से, निष्ठा से, श्रद्धा और साधना तथा अध्यवसाय से मनुष्यता के, नहीं-नहीं, ईश्वरत्व के चरम शिखर पर प्रतिष्ठित और ईश्वर के रूप में पूजित हो सकती है। वे यह भी दिखाना चाहती थीं कि मनुष्य की प्रतिष्ठा धन से नहीं, सद्‌गुणों के विकास से होती है, और वह किसी के लिए भी सुलभ है। माँ के समय में मनुष्य धन के परिमाण के आधार पर पूजित और आदृत होता था। माँ ने अपनी लीला से इस धारणा को ध्वस्त किया था।

श्री सारदा का विवाह हुआ, जब वे मात्र छः वर्षों की थीं और श्रीरामकृष्ण थे चौबीस वर्षों के। दोनों की उम्र में अट्ठारह वर्षों का अन्तराल था। दोनों गरीब थे। गरीबी इस हद की थी कि श्रीरामकृष्ण ने विवाह के अवसर पर माँ के लिए जो आभूषण लाये थे वे मँगनी के थे। और जब सारदा देवी ससुराल आयीं तो सोयी हुई अवस्था में स्वयं श्रीरामकृष्ण ने उनके शरीर से एक-एक कर सारे आभूषण उतार लिए। जिनके आभूषण थे उन्हें लौटाना जो था ! दो निर्धन परिवारों में रचाया गया यह विवाह—यह बेमेल विवाह—यह आडम्बर हीन विवाह—एक अर्थ में अर्थहीन था, तत्कालीन निर्धन परिवारों के वैवाहिक आचार का एक करुणापूर्ण चित्र था, लेकिन इसी विवाह ने विश्व-मानवता के इतिहास में एक चमत्कार उत्पन्न कर दिया। "वास्तव में श्री रामकृष्ण देव के साथ श्री सारदा देवी का जो मिलन हुआ था, उसका नाम 'विवाह' नहीं हो सकता। वह तो दैहिक सम्बन्ध रहित दो पवित्र आत्माओं का मिलन है। उसमें न तो दैहिक सुख का संस्पर्श है और न प्रजनन की कोई आकांक्षा ही। उस मिलन के माध्यम से समग्र मानव-जाति को दाम्पत्य जीवन के सम्बन्ध में एक नवीन आदर्श और अभिनव शिक्षा प्राप्त हुई।" क्या था यह नवीन आदर्श ? हम लोग जानते हैं कि एकबार स्वयं माँ ने श्रीरामकृष्ण की ओर इशारा कर बताया था कि मैं उनसे ही विवाह करूँगी। आखिर क्यों ? माँ इस विवाह से यह दर्शाना चाहती थीं कि एक पूर्ण और सफल दाम्पत्य जीवन के लिए दैहिक मिलन का होना कतई आवश्यक नहीं है। देह-मोह से परे रहकर, शारीरिक और मांसल भोगजनित सुख से मुक्त होकर भी नारी अपने पति के प्रति एक पूर्ण समर्पिता, अनुरागरंजिता, सेवासंवलित, आत्मा-पिता बनकर सफल दाम्पत्य जीवन का उज्जवल-रस, अनाविल प्रीति और निरंजन आनन्द का उपभोग कर सकती है। वर्तमान नारी-वर्ग के लिए यह कैसा राज मार्ग है—निश्छल और मुक्त आनन्द के भोग का !

श्रीमाँ सारदा थीं एक आदर्श पत्नी, एक आदर्श माँ, एक आदर्श गुरु, और नारी-मुक्ति की एक आदर्श प्रतिष्ठापिका। कुल मिलाकर वे एक आदर्श नारी थीं--एक समग्र सम्पूर्ण नारी---नारीत्व का एक चरम आदर्श।

माँ सारदा श्रीरामकृष्ण की लीला-सहधर्मिणी थीं। एक आदर्श पत्नी के रूप में श्रीरामकृष्ण की मनोवृत्ति, आदर्श और चरित्र के अनुरूप उन्होंने अपने को बड़ी सहजता से ढाल रखा था। श्रीरामकृष्ण के जीवन में अंतिम क्षणों तक वे छाया की भाँति उनसे जुड़ी रहीं। उनकी हर सेवा-सुविधा के लिए सदैव प्रस्तुत, सदैव तत्पर। किन्तु, उन्होंने अपने व्यक्तित्व की निजता को कभी तिलांजलि नहीं दी। जब पहलीबार वे दक्षिणेश्वर आयीं, तब श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनसे पूछा—'क्या तुम मुझे संसार में खींच लेने के लिए आयी हो ?' माँ ने स्पष्ट रूप में उत्तर दिया—'नहीं, आपको संसार में क्यों खींचूँगी ? मैं तो आपके साधना-पथ में आपकी सहायता करने आयी हूँ।' पति के साधना-पथ में सहायिका बनना ही तो भारतीय नारी का चरम आदर्श है। इसी से श्रीमाँ और ठाकुर "एक दूसरे के भीतर-बाहर व्यापत होकर, परिपूर्ण होकर अवस्थित थे। दोनों आत्माएँ मिलकर एक हो गयी थीं। दो स्वर मिलकर एक सुमधुर संगीत सृष्ट कर रहे थे।"

उन दिनों अँग्रेजी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में भारतीय ललनाएँ बहने लगी थीं। नयी सभ्यता और नारी-मुक्ति के नाम पर बाहरी चमक-दमक और शील-त्याग ही जैसे उनका आदर्श हो गया था। अपनी सादगी सेवा, श्रद्धा और शील से माँ ने मानो भारतीय ललनाओं के उच्छृंखल आवेग-वेग को रोक दिया।

माँ के पीछे भारतीय उच्चादर्शों और सांस्कृतिक धरोहरों की पाँच हजार वर्षों की उज्वल परम्परा थी और सामने थी नयी पश्चिमी सभ्यता की तेजोदीप्त प्रखर लहर। माँ दोनों का संगम बिन्दु बन गयीं। पति परायणा होने पर भी वे पति की हर बात को आँख मूँद कर नहीं मान लेती थीं। बाबूराम नामक एक तरुण शिष्य को पाँच-छः रोटियाँ खिला देने पर जब श्रीराम कृष्ण ने उनसे किंचित् आवेश में कहा—'तुमने ऐसा क्यों किया? क्या इन बच्चों को तुम बर्बाद कर दोगी?' तब माँ ने कहा—'तुम्हें उनकी चिन्ता करने की जरूरत नहीं। मैं उन्हें सँभाल लूँगी।' कितना आत्म-विश्वास, कितना स्वाभिमान है इस उक्ति में! मगर इसमें औद्धत्य नहीं है। इसी भाँति एक बार जब किसी असत् चरित्र की महिला के द्वारा भोजन की थाली छू जाने के कारण श्रीरामकृष्ण से भोजन नहीं किया जा रहा था तब उन्होंने माँ से कहा था—'तुमने ऐसा क्यों किया? कहो, अब से किसी ऐसी नारी से मेरे भोजन की थाली तो नहीं छुलवाओगी?' तो श्रीमाँ ने तपाक् से उत्तर दिया था—"नहीं, ऐसा वादा नहीं कर सकती। जब भी कोई मुझे 'माँ' कहकर मुझसे थाली माँगेगी, तो मैं उसे 'ना' नहीं कह सकूँगी। तुम तो अकेले मेरे नहीं हो, देव! तुम तो सभी के हो।' एक साथ ही पत्नीत्व और मातृत्व का कैसा गंगा-यमुनी समन्वय था श्रीमाँ में!

श्रीमाँ ने एक ओर परम्परा को स्वीकारा भी और रूढ़ियों के प्रति विद्रोह भी किया। ब्राह्मण-कन्या होने पर भी उन्होंने एक डोम डाकू के हाथ का भोजन किया। विधवा होने पर भी सदैव वे लाल-किनारी की धोती पहनती रहीं, हाथों में सोने का कंगन धारण करती रहीं और विरोध होने पर कहती रहीं—'इन सब छोटी-मोटी बातों का ख्याल नहीं करूँगी। जिसे जो बोलना हो बोले।' विधवाओं से वे भोजन की कठोरता का नियम-पालन करने की मनाही करतीं। एक विधवा शिष्या से उन्होंने कहा था—'बाल कटाकर छोटा क्यों कर लिया है? बाल बड़े रखना। तेल लगाकर स्नान करना।'

जिन दिनों विदेश जाने का साहस कोई-कोई ही कर पाता था और समुद्र पार के देशों से लौटने पर उसे जाति-च्युत होना पड़ता था अथवा प्रायश्चित्त करना पड़ता था, देशाचार के भयंकर अंधकार के उन दिनों में भी श्रीमाँ ने स्वामी विवेकानन्द को विदेश जाने की अनुमति देकर एक विलक्षण साहसिकता, दूरदर्शिता और संतति वत्सलता का परिचय दिया था। उन्होंने अमजद जैसे अपराधकर्मी मुसलमान को अपने हाथों परोस कर खाना खिलाया और जूठे स्थान को अपने हाथों साफ किया। उन्होंने कहा 'मेरे लिए अमजद और सरत् (स्वामी सारदानन्द) में कोई अन्तर नहीं है।' वस्तुतः यह अभेद-दृष्टि, यह अद्वैत-भाव एक शुद्ध माता ही रख सकती है। श्रीरामकृष्ण ने श्री माँ से कहा था—'आँचल में अद्वैत-भाव बाँधकर जो इच्छा हो करना।' और श्रीमाँ ने इसी भाव में अपने को ढाल लिया।

गुरु भाव भी माँ का वैसा ही था। श्रीरामकृष्ण ने एक दिन उनसे कहा था—'क्या सब इसे (अपनी ओर संकेत कर) ही करना होगा? तुम कुछ नहीं करोगी?' उनका आशय था कि जीवोद्धार का उत्तरदायित्व माँ भी लें। और माँ ने यह दायित्व भी बड़ी निष्ठा से सँभाला। एक परम लज्जावती वधू के रूप में रहनेवाली श्री माँ एक परम करुणामयी मुक्तिदायिनी बन गयीं। जो भी माँ के पास आया चाहे वह एक कुली हो या एक पारसी, सब को मुक्त हस्त से माँ ने मुक्ति के मार्ग का मंत्र दिया। स्नेह-पीयूषरूपिणी, तृप्ति-प्रदायिनी, कल्याणरूपिणी, मंगलदात्री जननी के रूप में श्रीमाँ सारदा एक सम्पूर्ण नारी बन गयीं। आज की दिशा-भ्रांत, स्वार्थ और भोग में लिप्त रहने वाली नारियों के लिए

वे पूर्णता का, पवित्रता का, स्नेह का, समर्पण का, परम्परा और आधुनिकता के समन्वय का एक चरम परम आदर्श बन गयीं। त्याग और वैराग्य का, आधुनिक अर्थ में शिक्षा का अभाव रहते हुए भी शुद्ध ज्ञान का, तथा संतान-हीना रहते हुए भी परम दैवी-मातृत्व का विलक्षण संगम बनकर वे एक जंगम तीर्थराज हो गयीं।

श्रीरामकृष्ण के लीला-पार्षद लाटू महाराज (स्वामी अद्भुतानन्द) ने श्रीमाँ की महिमा के विषय में कहा था—'माँ को पहचानना क्या साधारण बात है? ठाकुर ने उनकी पूजा की थी। इसी से समझ लो! माँ कौन हैं—यह तो एकमात्र ठाकुर ने ही पहचाना था। और कुछ-कुछ स्वामीजी (विवेकानन्द) ने जाना था। वे स्वयं लक्ष्मी हैं। उनकी करुणा को समझने के लिए बहुत तपस्या की आवश्यकता है।"—"सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।"

सन् १८९४ ई० में विश्व भर में अपने ज्ञान की कीर्ति-पताका लहराने वाले स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिका से अपने एक गुरुभाई को लिखा था—"माँ क्या हैं, तुम कुछ समझ न सके, अभी तक तुममें से कोई भी न समझ सका; धीरे-धीरे समझ सकोगे। ..... मेरी आँखें खुल गयी हैं, दिन-पर-दिन सब समझता जा रहा हूँ। .....मुझ पर माँ की कृपा पिता की कृपा से लाखगुनी अधिक है।.....माँ की आज्ञा होते ही यह भूत वीरभद्र सब कुछ कर सकता है। अमेरिका आने के पहले मैंने चिट्ठी लिखकर माँ से आशीर्वाद माँगा था। उन्होंने आशीर्वाद दिया, और बस मैं छलांग मार कर सागर-पार हो गया। इसी से समझ लो।.....माँ की बात याद आने पर कभी-कभी कहता हूँ—'को रामः'! दादा, यह जो मैंने कहा, बस यहीं पर मेरी कट्टरता है।....."

माँ का अर्थ ही है—मुक्तिदायिनी। नारी अपनी पूर्णता में, अपनी परमावस्था में आकर सर्वमंगला 'माँ' हो जाती है। उसकी हर साँस से विश्व-मंगल का संगीत फूटता है। उसकी हर धड़कन से विश्व-प्रेम का निर्झर फूटता है। उसकी हर भंगिमा में लोक-शोक का अंधकार हरने वाला एक नया सूर्योदय होता है। उसका हर शब्द भव-बंधन का भय-हारी मंत्र हो जाता है। और श्रीमाँ सारदा ऐसी ही एक पूर्ण नारी थीं, भव-भय-हारी, परम कल्याणी विश्व-माता थीं। इसी से स्वामी विवेकानन्द ने कहा था—'माँ को केन्द्र बनाकर ही भारत की नारियाँ फिर जगेंगी।" और स्वामीजी की अनन्य शिष्या भगिनी निवेदिता के शब्द-अर्घ्य हैं—"नारीत्व के सम्बन्ध में श्रीरामकृष्ण की अंतिम बात हैं—श्री श्री माँ।"

मित्रो, मेरी आंतरिक प्रार्थना है श्रीमाँ से कि वे अपनी समस्त सन्तानों का मंगल कर भारत की नारियों में अपने जीवनादर्श की स्वर्णिम प्रतिष्ठा करें। जय श्रीरामकृष्ण! जय श्रीमाँ!!

□

एक बात कहती हूँ। यदि शान्ति चाहो, बेटी, तो किसी का दोष मत देखना। दोष देखना अपना। संसार को अपना बना लेना सीखो। कोई पराया नहीं है, बेटी, यह सारी दुनिया तुम्हारी अपनी है।

—श्रीमाँ सारदा

# श्रीसीतारूपिणी श्रीमाँ सारदा

गोस्वामी तुलसीदास कृत 'रामचरितमानस' में श्रीराम मनु के समक्ष श्रीसीता का परिचय देते हुए कहते हैं :—

आदिसक्ति जेहिं जग उपजाया।
सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥

जब भगवान मानव-जाति के उद्धार के लिए धरा धाम में अवतरित होते हैं, तब उनके साथ उनकी शक्ति का स्त्री रूप में प्रायः आविर्भाव होता है, जो उनकी अभिन्न सहचरी होती है। श्रीरामचन्द्रजी के साथ सीतादेवी, श्रीकृष्णजी के साथ श्रीराधिका, बुद्धदेव के साथ यशोधरा, श्री चैतन्यदेव के साथ विष्णुप्रिया के आगमन से यही प्रमाणित होता है। वर्तमान युग में वही दिव्य शक्ति माँ सारदा के रूप में भगवान श्रीरामकृष्ण के दैवी-कार्य को सम्पन्न कराने के लिए अवतरित हुई हैं। तभी तो श्री रामकृष्ण उनके सम्बन्ध में कहा करते थे, "वह सारदा है—सरस्वती है। ज्ञान देने के लिए आयी है। वह मेरी शक्ति है।" स्वामी विवेकानन्द ने कहा था, "माँ के जीवन की अपूर्व विशिष्टता कौन समझ सका है? कोई भी नहीं। किन्तु धीरे-धीरे सब जान सकेंगे। जिस शक्ति के बिना जगत् का उद्धार नहीं हो सकता, उसी महाशक्ति का भारतवर्ष में पुनः प्रबोधन करने के लिए माँ अवतीर्ण हुई हैं, और उनका आदर्श लेकर एक बार फिर संसार में गार्गी और मैत्रेयी के समान स्त्री-रत्न उत्पन्न होंगे।"

....."माँ क्या है, तुम, कुछ समझ न सके, अभी तक तुममें से कोई भी न समझ सका, धीरे-धीरे समझ सकोगे—

मेरी आँखें खुल गयी हैं, दिन-पर-दिन सब समझता जा रहा हूँ।.....मुझपर माँ की कृपा पिता की (श्री रामकृष्ण की) कृपा से लाखगुनी अधिक है।

.....भाई, क्षमा करना। दो खुली-खुली बातें कह दीं।

.....बस यहीं पर माँ के सम्बन्ध में मैं भी जरा कट्टर हूँ। माँ की आज्ञा होते ही यह भूत वीरभद्र सब कुछ कर सकता है। अमेरिका आने के पहले मैंने चिट्ठी लिखकर माँ से आशीर्वाद माँगा था। उन्होंने आशीर्वाद दिया, और बस मैं छलांग मारकर सागर-पार हो गया। इसीसे समझ लो।.....भाई, माँ की बात याद आने पर कभी-कभी कहता हूँ-'को रामः'।"

युग के प्रयोजन के अनुसार भगवान् अवतार लेते हैं। भगवान श्री राम ने अवतार लिया था—रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद आदि दैत्यों का बधकर जगत में धर्म एवं शांति की स्थापना के लिए, और साथ में आयी थीं उनकी शक्ति—जनक नन्दिनी श्रीसीता, पतिव्रता नारी का आदर्श स्थापित करने को। इस बार भगवान श्री रामकृष्ण ने अवतार लिया है एक गरीब ब्राह्मण परिवार में,—राज प्रासाद भी नहीं, साथ में धनुष-बाण भी नहीं इसबार सत्व का पूर्ण विकास है,—क्योंकि कलिकाल से ग्रसित सभी मानवों के भीतर बैठे रावण, कुम्भकर्ण, मेघनाद रूपी काम, क्रोध, लोभ रूपी दुर्गुणों का नाश करना है। त्यागी का आदर्श दिखाना है, और सभी धर्मों का समन्वय कर जगत में शांति एवं आध्यात्मिकता की स्थापना करनी है। साथ में अवतरित हुई हैं—माँ सारदा—एक गरीब ब्राह्मण परिवार में, एक छोटे से

गाँव जयरामबाटी में। इस बार पवित्रता नारी का आदर्श तो दिखाना ही है, किन्तु साथ-साथ कलियुग की कालिमा से पूर्ण जगत में पवित्रता, सहिष्णुता और सर्वोपरि मातृभाव का आदर्श स्थापित करना है। अतः स्वाभाविक है, श्रीसीता और माँ सारदा के जीवन में युग के प्रयोजन के अनुसार अनेक भिन्नताएँ हों। फिर श्रीसीता के जीवन के बारे में विस्तृत रूप से जानने की कोई ऐसी ऐतिहासिक एवं प्रामाणिक सामग्री भी नहीं है जो माँ सारदा के सम्बन्ध में उपलब्ध है; ताकि हम माँ सारदा के जीवन का श्रीसीता के जीवन के साथ तुलनात्मक अध्ययन कर सकें। फिर भी, उपलब्ध जानकारी पर ही दृष्टि रखते हुए दोनों चरित्रों पर जब हम मनन करते हैं, तो कुछ बातों में अद्‌भुत् सामंजस्य प्रतीत होता है।

माँ सारदा ने जन्म लिया था, श्रीरामचन्द्र मुखोपाध्याय की पुत्री के रूप में। पिता श्रीराम के उपासक थे। घर के कुलदेवता श्रीराम ही थे। फिर पति का नाम 'रामकृष्ण', श्वसुर का नाम था 'खुदीराम' और श्वसुर-गृह के कुलदेवता भी रघुवीर ही थे। क्या यह अद्‌भुत् संयोग नहीं है?

श्री सीता का जन्म अलौकिक रूप से हुआ था। कहते हैं—राजा जनक को वे हल जोतते समय धरती माता की भेंट के रूप में प्राप्त हुई थीं। माँ सारदा का जन्म भी आलौकिक रूप से हुआ था। एकबार माता श्यामासुन्दरी देवी को शिहड़ ग्राम में अपने मायके में रहते समय दस्त की शिकायत हुई। अँधेरी रात में 'अकेला' तालाब के किनारे गयीं, लेकिन एकाएक जगह स्थिर न कर सकने के कारण आँवे के पास वाले एक श्रीफल के वृक्ष के नीचे बैठ गयीं। अकस्मात् आँवे की ओर झनझनाहट हुई और बेलवृक्ष की शाखा से उतर कर एक छोटी बालिका ने अपने कोमल हाथों से श्यामसुन्दरी का गला पकड़ लिया। श्यामासुन्दरी मूर्छित हो भूमि पर गिर पड़ीं। उन्हें यह नहीं जान पड़ा कि वे इस अवस्था में कब तक रहीं। उनके आत्मीय लोगों ने खोजते हुए आकर उन्हें सचेत किया। तब उन्होंने अनुभव किया कि वही नन्हीं बालिका उनके गर्भ में प्रविष्ट हो गयीं। उस समय श्रीमाँ के पिता रामचन्द्र मुखोपाध्याय कलकत्ते में थे। कलकत्ता जाने के पूर्व एकदिन जयरामबाटी में दोपहर के भोजन के पश्चात् वे गरीबी की चिन्ता में दुःखी हो सो गये थे। सोते समय स्वप्न में उन्होंने देखा कि एक हेमांगी बालिका ने अपनी कोमल बाहुओं से उनका गला लपेट लिया। बालिका का अपूर्व रूप और मूल्यवान आभूषण सहज ही उसकी असाधारणता का परिचय देते थे। रामचन्द्र ने महान आश्चर्य में पड़कर पूछा, "अरी बच्ची, तू कौन है?" स्नेहभरे कण्ठ से बालिका ने उत्तर दिया, "लो मैं तुम्हारे पास आ गयी हूँ।" रामचन्द्र की निद्रा भंग हुई। स्वप्न की बात सोच उन्हें यह विश्वास हो गया कि स्वयं लक्ष्मीजी ने कृपा करके दर्शन दिया है। घर लौटने पर अपनी सहधर्मिणी के मुख से जब उन्होंने शिहड़ में देवी के अविर्भाव का संवाद सुना, तब उनके आस्तिक और धर्मपरायण मन ने सहज ही इस बात को सत्य मान लिया। भक्त ब्राह्मण-दम्पति उसी समय से इन्द्रियसुख से उदासीन हो पवित्र शरीर और शुद्ध अन्तःकरण से देवशिशु के जन्मकाल की प्रतीक्षा करने लगे। श्रीमाँ के जन्म तक रामचन्द्र ने श्यामासुन्दरी का अंग-स्पर्श नहीं किया। संवत १९१० पौष कृष्ण सप्तमी, बृहस्पतिवार (२२ दिसम्बर, १९५३ ई० को) शाम के पहले मुहूर्त के अति शुभक्षण में श्रीसारदामणि देवी ने जन्म-ग्रहण किया।

बाल्यकाल में श्रीसीता ने शिव का धनुष उठाकर देवी शक्ति का परिचय दिया था। माँ सारदा जब बाल्यकाल में ढोर के लिए चारा काटने के निमित्त जलमें घुसतीं तो देखतीं कि एक समवयस्का बालिका घास काट रही है। एक गुच्छा किनारे पर रख आने के पश्चात् वे देखतीं कि उस बालिका ने दूसरा गुच्छा काट रखा है। उस समय की बात का स्मरण करते हुए बाद मे श्री माँ ने कहा था, "देखो बेटा, बचपन में मैं देखती थी कि मेरे ही समान एक लड़की मेरे साथ-साथ रहती हुई मेरे सभी कामों में मदद देती है, मेरे साथ हँसी-विनोद करती

है, पर दूसरों के आने पर उसे कोई देख नहीं पाता था। दस-ग्यारह वर्ष तक ऐसा ही होता रहा।" तेरह वर्ष की उम्र में जब श्री माँ कामारपुकुर में अपनी समुराल में थीं, उस समय अलौकिक रूप से आठ बालिकाएँ उन्हें हलदारपुकुर के तालाब में नहाने के लिए नित्य ले जाया करती थी। जमरामबाटी में, श्री माँ को बाल्यकाल के समय, एकबार जगद्धात्री की पूजा के समय हलदेपुकुर के रामहृदय घोषाल उपस्थित थे। माँ को जगद्धात्री के सामने ध्यान करते हुए देख वे विस्मय से खड़े हो बहुत देर तक देखते रहे, किन्तु कौन जगद्धात्री थीं और कौन माँ, यह बिल्कुल निश्चय न कर सकने के कारण वे डर से भाग गये।

श्रीसीता का विवाह, श्रीराम से स्वयंवर के बाद हुआ था। किन्तु पुष्पवाटिका में, प्रथम दर्शन के बाद ही उन्होंने श्रीराम का मन से वरण कर लिया था। श्रीमाँ ने भी मानो इसी प्रकार श्रीरामकृष्ण का वरण कर लिया था। श्रीरामकृष्ण के भानजे हृदयराम मुखोपाध्याय का घर शिहड़ में था। इस नाते श्रीरामकृष्ण वहाँ आया-जाया करते थे और उत्सवों-कीर्तनों आदि में सम्मिलित होते थे। श्रीमाँ का ननिहाल भी इसी ग्राम में था। एकबार हृदय के घर में गाने के आयोजन के समय छोटी बालिका सारदा उस मजलिस में एक महिला की गोद मे बैठी हुई थी। गीत समाप्त होने पर उस स्त्री ने विनोद में सारदा से पूछा, "इस जगह बहुत से लोग इकट्ठे हैं। इनमें से किसके साथ तू विवाह करना चाहती है?" सारदा ने तुरन्त दोनों हाथ उठाकर समीप ही बैठे हुए श्रीरामकृष्ण को दिखा दिया। जिस दिन माँ इस प्रकार स्वयंवरा हुईं, उस दिन उन्हें सांसारिक दृष्टि से 'विवाह' शब्द का अर्थ भी ज्ञात नहीं था। किन्तु जिस दैव-प्रेरणा से उन्होंने अपने पति को हाथ फैलाकर बतला दिया, उसी दैव-विधान से उनके सत्यसंकल्प मन की अभिलाषा कुछ वर्षों में ही पूर्ण हुई। श्रीमाँ ने जब छठवें वर्ष में पैर रखा था, उसी समय उनका विवाह श्रीरामकृष्ण से हो गया। विवाह के पहले श्रीरामकृष्ण की माता चन्द्रमणि ने पुत्र के वैराग्यमय हृदय को विवाह-बन्धन से बाँधने के लिए छिपकर कन्या की बहुत खोज की थी किन्तु उनके सारे प्रयास विफल हुए थे। श्रीरामकृष्ण ने तब स्वयं ही कहा था, "जयरामबाटी के रामचन्द्र मुखर्जी के घर जाकर देखो। वहाँ मेरे लिए कन्या चिह्नित करके रखी हुई है।"

विवाह के बाद जब श्री माँ दक्षिणेश्वर रहने आयीं तब उन्होंने नौबतखाने की एक छोटी कोठरी में कई वर्ष बिताये। कभी-कभी उस तंग कोठरी में घुसते समय उनका सिर टकरा जाता था। एकबार तो सिर फूट ही गया। कलकत्ते से कुछ स्त्रियाँ जब उनसे मिलने आतीं, दरबाजे की चौखट पर हाथ रख खड़ी होकर कहतीं, "आह! कैसी कोठरी में हमारी सती लक्ष्मी (श्रीमाँ) है, मानो वनवास है।" सचमुच श्रीसीता के वनवास से श्री माँ का यह नौबतखाने में निवास कम कष्टदायक नहीं था।

श्रीसीता ने जिस प्रकार 'अग्नि परीक्षा' देकर पातिव्रत धर्म का आदर्श स्थापित किया, उसी प्रकार श्रीमाँ ने भी श्रीरामकृष्ण की महासमाधि के बाद पंचाग्नि-तप का अनुष्ठान किया। उस समय माँ के मन में तीव्र वैराग्य और विषाद था। श्रीरामकृष्ण के अंतर्धान के कुछ दिन बाद से श्रीमाँ को प्रायः एक दर्शन होता था—दाढ़ी-मूँछवाले एक संन्यासी उन्हें पंचतपा करने की सलाह दे रहे हैं। अतः बेलुड़ रहते समय उन्होंने योगिन माँ के साथ यह अनुष्ठान किया। छत के ऊपर मिट्टी डाल चारों ओर पाँच-पाँच हाथ की दूरी पर उपली की आग जलायी गयी। अग्नि का घेरा काफी बड़ा था और लपटें तेज उठ रही थी, उधर आकाश में ग्रीष्म-ऋतु का प्रचण्ड मार्तण्ड वेग से तप रहा था। श्रीरामकृष्ण का स्मरण कर श्रीमाँ ने उस अग्निपुंज के ठीक बीच आसन जमा लिया। प्रातः से लेकर संध्या तक, सात दिनों तक श्रीमाँ की यह तपस्या चलती रही, उनके शरीर की त्वचा झुलसकर काली पड़ गयी। तब मन की अग्नि कुछ शान्त हुई।

राजराजेश्वरी होकर भी श्रीसीता के दुःख-क्लेशों का अन्त नहीं था। श्रीमाँ का भी सारा जीवन दरिद्रता, पारिवारिक झंझटों और क्लेशों के बीच बीता। श्रीरामकृष्ण के निधन के पश्चात जब वे कामारपुकुर, अपनी ससुराल, में रहने लगीं तब लोगों ने सभी प्रकार के कष्ट देने प्रारम्भ किये। असहाय विधवा को जो १०-१५ रु० प्रतिमाह दक्षिणेश्वर मंदिर से मिलते थे, वे भी रिश्तेवालों ने बन्द करवा दिये। ग्रामवासी उनकी रहन-सहन को लेकर विभिन्न प्रकार की आलोचनाएँ और कटु उक्तियाँ कहने लगे। इस समय श्रीमाँ अपने को बहुत ही एकाकिनी अनुभव करतीं। कई दिन ऐसे भी बीते, जब श्रीमाँ को भात के साथ नमक भी खाने को उपलब्ध नहीं हुआ। फटे कपड़ों में गाँठ लगाकर पहनने और हाथ में कुदाल ले मिट्टी खोदकर शाक पैदा करके जीवन-निर्वाह करने के लिए वे एक प्रकार प्रस्तुत थीं, लेकिन भविष्य की अनिश्चितता, पारिवारिक अनैक्य तथा सामाजिक उदासीनता या अत्याचारों पर तो उनका कोई वश न था।

परमसहिष्णु सीतामाता ने अशोकवाटिका में कितने ही कटु वचन सुने, रावण, राक्षसों और राक्षसिनियों के अत्याचार सहन किये। एकबार तो वे त्रिजटा को आग लाने का अनुरोध कर बैठती हैं, जिससे चिता में वे अपनी देह जला दें ताकि रावण के शूल के समान कठोर वचनों को न सुनना पड़े :—

आनि काठ रचु चिता बनाई।
मातु अनल पुनि देहि लगाई।।
सत्य करहि मम प्रीति सयानी।
सुनै न श्रवन सूल सम बानी।।

किन्तु श्रीमाँ को अपने परिवार में रहते-रहते ही रिश्तेदारों से जो अत्याचार सहन करने पड़ते और कटु वचन सुनने पड़ते, वे इनसे कम नहीं थे। भ्राताओं की स्वार्थबुद्धि, भतीजियों का आपस में द्वेष, नलिनी दीदी का छुआ-छूत, राधु (पगली भाभी की लड़की जिसे श्रीमाँ ने पाला-पोसा था) का बावली-सा हठ और छोटी भाभी (श्रीमाँ के भाई की पागल स्त्री सुरबाला) का पागलपन-ये सब मिलकर जिस अवर्णनीय वातावरण की सृष्टि करते थे, उसमें एकमात्र धीरता-स्वरूपिणी माँ के लिए ही शान्त रहकर गृहस्थी का काम करना सम्भव था।

१९१३ ई० की फरवरी में श्रीमाँ कलकत्ते के 'उद्बोधन' में थीं। पगली भाभी(सुरबाला) की धारणा थी कि श्रीमाँ ने दवादारू से उसकी लड़की राधु को अपने वश में कर उससे दूर करके रखा है। इसलिए वे श्रीमाँ को लगातार गाली देती थीं। एक रात को भोजन के बाद इस प्रकार की गालियों से ऊबकर श्रीमाँ ने कहा "तू मुझे साधारण मनुष्य मत समझना। तू मुझे माँ-बाप की गाली देती है, पर मैं तेरा अपराध नहीं लिया करती, सोचती हूँ कि ये दो-चार शब्दों के सिवा और कुछ तो हैं नहीं। यदि मैं तेरा अपराध लूँ, तो क्या तेरी रक्षा हो सकती है? जब तक मैं जीवित हूँ, तेरी ही भलाई है। तेरी बेटी तेरी ही रहेगी। जब तक बड़ी नहीं होती, तभी तक देखभाल करती हूँ। नहीं तो मुझे क्या माया है? अभी काट सकती हूँ।" एक दिन संध्या को श्रीमाँ जब रात के लिए तरकारी काट रही थीं, अचानक पगली भाभी ने आकर कहा, "तुमने ही तो राधू को अफीम खिलाकर पंगु बना अपने वश में कर रखा है। मेरे नाती को, मेरी लड़की को मेरे पास जाने भी नहीं देती।" श्रीमाँ ने उस समय निर्विकार चित्त से कहा, "ले जा अपनी लड़की को, वह पड़ी हुई है, क्या मैंने छिपा रखा है?" भाभी झगड़ने को आयी थी, इसलिए माँ की उदासीनता ने मानो उसके घाव पर नमक छिड़क दिया। गाली से शुरू कर दो-चार बातों के बाद ही उनकी उग्रता चरम सीमा पर पहुँच गयी। श्रीमाँ को मारने के लिए वे एक जलती हुई लकड़ी लेकर दौड़ीं। उस प्रलयंकारी मूर्ति को देख श्रीमाँ चीख उठीं, 'अरे, कोई है? पगलीने मुझे मार डाला।' वरदा महाराज दौड़कर आये तो देखते हैं कि लकड़ी सिर पर पड़नेवाली ही है। उन्होंने लपककर झटके के साथ उसे दूर फेंक

दिया और भाभी को दरवाजे के बाहर निकाल दिया। इधर श्रीमाँ भी उस उत्तेजना से मानों बदल गयीं, अचानक उनके मुख से निकल पड़ा "री पगली, तू क्या करने जा रही थी? तेरा—वह हाथ गिर जायगा।" दूसरे ही क्षण वे जीभ काटकर सिहर उठीं और श्रीरामकृष्ण की छवि की ओर देख हाथ जोड़कर बोलीं, "ठाकुर, यह मैंने क्या किया? अब क्या होगा? मेरे मुँह से तो कभी किसी के लिए अभिशाप नहीं निकला, अन्त में वह भी हुआ अब फिर क्यों?" उस समय श्रीमाँ की आँखों से आँसू टपक रहे थे। श्रीमाँ के देहत्याग के कुछ दिन बाद गलित-कुष्ठ से भाभी के हाथ की उँगलियाँ गिर पड़ीं, और अल्प समय तक पीड़ित रहकर ही वे श्रीमाँ के पादपद्मों में लीन हो गयीं।

राधू ने संतान-प्रसव के बाद रुग्ण होकर अफीम खाने की आदत डाल ली थी, और अधिक मात्रा में अफीम पाने के लिए वह श्रीमां को कष्ट देती। एक दिन श्रीमाँ जब तरकारी काट रही थीं, अफीम के लिए वह जिद करने लगी। श्रीमां ने जब समझाना चाहा तब क्रोध में आकर राधू ने पास की टोकरी से एक बड़ा बैंगन उठाकर श्रीमां की पीठ पर दे मारा। धमाके के साथ ही श्रीमाँ की पीठ लाल हो फूल उठी। श्रीमां ने श्रीरामकृष्ण की छवि को ओर ताककर हाथ जोड़ कहा, "ठाकुर, उसका अपराध न गिनना, वह अबोध है।" फिर अपने पैर की धूल उसके सिर में लगाकर कहा, "राधी, जानती है, इस शरीर को ठाकुर ने कभी जरा सा कड़ा शब्द भी नहीं कहा, और तू इतना कष्ट देती है? तू क्या समझेगी कि मेरा स्थान कहाँ है?..... राधू, मैं यदि रूठ जाऊँ, तो त्रिभुवन में भी तुझे आश्रय नहीं मिलेगा।" अप्रैल १९२० के मध्य में एक दिन 'उद्बोधन' में संध्या आरती के बाद राधू ने जिद ठानी कि उसके बच्चे को उसी समय खिलाना होगा। जब श्रीमाँ ने समझाना चाहा कि अभी उसके खाने का समय नहीं हुआ है, तब राधू गाली देने लगी, "तू मर जा, तेरे मुँह में आग लगे" इत्यादि। श्रीमाँ बहुत दिन से रोग-पीड़ित थीं तथा अवर्णनीय उत्पीड़न सहन कर रही थीं। इसलिए आज रह न सकी, तंग आकर बोलीं, "हाँ, मेरे मरने के बाद तेरी क्या दशा होगी, उसका पता चलेगा।" ठीक इसके तीन महीने बाद, श्रीमाँ ने लीला-संवरण कर लिया। बाद में सचमुच राधू को अनेक कष्ट झेलने पड़े थे।

श्रीसीता, श्रीराम के ध्यान और जप में ही तल्लीन रहती थीं। हनुमानजी लंका से लौटकर श्रीराम से श्रीसीता की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं :—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जंत्रित जाहिं प्रान केहिं बाट॥

"आपका नाम रात-दिन पहरा देने वाला है, आपका ध्यान ही किवाड़ है। नेत्रों को अपने चरणों में लगाये रहती हूँ, यही ताला लगा है, फिर प्राण जायँ तो किस मार्ग से?"

श्रीमाँ भी दिन-रात श्रीरामकृष्ण के ध्यान में, जप मे मग्न रहतीं थीं, इसीलिए श्रीरामकृष्ण के पार्षद स्वामी अभेदानन्दजी ने अपने 'सारदादेवीस्तोत्रम्' में लिखा :—

रामकृष्णगतप्राणां तन्नामश्रवणप्रियाम्।
तद्भाव रंजिताकारां प्रणमामि मुहुर्मुहुः॥

अर्थात्, "हे माता, आपका हृदय रामकृष्णमय है, उनका नाम-श्रवण आपको प्रिय लगता है, उनके भाव में ही आप रंजिता हैं, आपको मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ।

जगज्जनी जानकी का वात्सल्य असीम था, उनके वात्सल्य की छाया में लक्ष्मण आदि भाइयों ने, हनुमान ने तथा अन्य बानरों ने अपने हृदय की सन्तुष्टि पायी। श्रीमाँ के जीवन में तो इस मातृभाव की पराकाष्ठा ही दिखाई देती है। साधु, गृहस्थ, उच्च, नीच, बालक, वृद्ध, पापी-तापी सभी ने उनके वात्सल्य की छाया में आश्रय पाया। अमजद जैसे मुसलमान डकैतों को भी उन्होंने अपने स्नेह से जीत लिया। एकबार अमजद को

खाना परोसने के बाद, खाना समाप्त होने पर जूठी जगह को स्वयं धो दिया, तब नलिनी दीदी, "ओ बुआ, तुम्हारी जात गयी" इत्यादि कहकर बड़ी आपत्ति करने लगीं। उस समय इसी मातृभाव पर अधिष्ठित होकर उन्होंने कहा था, "जिस प्रकार शरत् (स्वामी सारदानन्दजी) मेरा लड़का है, उसी प्रकार यह अमजद भी।"

श्रीसीता की भांति ही श्रीमाँ भी अत्यंत लज्जाशीला थीं। निरहंकारिता और नम्रता की प्रतिमूर्ति श्रीमाँ अपने को सर्वदा श्रीरामकृष्ण के चरणों की आश्रिता ही समझती थीं किन्तु पारिवारिक व्यवहार या जन-साधारण के साथ बातचीत में उनका देवीत्व एकाएक प्रकट हो जाता था। काशी में पगली भाभी ने सारी रात श्रीमाँ को गालियाँ दीं, "ननदजी मर जायँ, ननदजी मर जायँ।" सुबह श्रीमाँ ने इसका उल्लेख करते हुए कहा, "छोटी बहू नहीं जानती कि मैं मृत्युंजय हूँ।" एकबार भूल से पगली भाभी के पैर में श्रीमाँ का हाथ जा लगा। पगली भाभी हड़बड़ा कर बोल उठीं, " तुमने क्यों हमारे पैर में हाथ लगाया? अब हमारा क्या होगा, भला?" उनका रंग-ढंग देख वे हँसते-हँसते लोट-पोट हो गईं। ब्रह्मचारी रासबिहारी ने कहा कि यद्यपि पगली भाभी माँ को गालियाँ देती हैं और अपमान करती हैं, फिर भी पैर में हाथ लग जाने का उन्हें डर है। इस पर माँ ने कहा, "बेटा, रावण क्या यह नहीं जानता था कि राम पूर्णब्रह्म नारायण और सीता आदिशक्ति जगन्माता हैं? फिर भी वह वैसा करने आया था। वह (पगली) क्या मुझे नहीं जानती है? जानती सब है, फिर भी ऐसा ही करने वह आयी है।"

स्वामी तन्मयानन्दजी ने एक बार श्रीमाँ से पूछा "माँ ठाकुर यदि भगवान हैं, तो आप कौन हैं?" बिना द्विधा के श्रीमाँ ने उत्तर दिया, "मैं और कौन हूँ? मैं भी भगवती हूँ।" मेदिनीपुर के नलिनीबाबू ने श्रीमाँ को एक बार प्रश्न किया "माँ, सब अवतारों में ही क्या आप आती हैं?" तब माँ ने उत्तर दिया, "हाँ बेटा"।

एक साल बारिश न होने के कारण जयरामबाटी आदि गाँवों की फसल सूखने लगी, तो गाँवों के किसान लाचार हो श्रीमाँ के पास गिड़गिड़ने लगे, "माँ, इस बार हमारे बाल-बच्चों के बचने की आशा नहीं—वे सभी अन्न के बिना भूखों मर जायेंगे"। उनकी कातरता देख माँ का मन पिघल गया। वे किसानों के साथ खेत देखने गयीं और चारों ओर ताकती हुई आकुल स्वर से कहने लगीं, "हाय, ठाकुर यह तुमने क्या किया? आखिर सभी क्या भूखे ही मर जायेंगे?" उसी दिन रात को पर्याप्त वर्षा हुई जैसी कई वर्षों से नहीं हुई थी।

एक बार कलकत्ता आने के रास्ते में श्रीमाँ विष्णुपुर स्टेशन में रेल की राह देख रही थीं कि इतने मे एक पछाँही कुली उन्हें देख व्यग्रभाव से उनके पास आया और अपनी भाषा में कहने लगा, "तुम मेरी जानकी माई हो, तुम्हें मै कितने दिनों से खोजता फिर रहा हूँ। इतने दिनों तक तुम कहाँ थीं?" इतना कहकर वह रोने लगा। कृपामयी श्रीमाँ ने उसे शान्त किया और उसे वहीं मन्त्रदीक्षा दी। बागदा के श्रीयुक्त शशिभूषण मुखोपाध्याय जब श्रीमाँ के पास शक्तिमंत्र के प्रार्थी हुए, तब उन्होंने कहा, "तुम्हारे भीतर तो राम को देखती हूँ। तुम्हारे वंश के लोग क्या राम मंत्र के उपासक हैं? राम और शक्ति तो अभिन्न हैं फिर तुम्हें राम-मंत्र लेने में क्या आपत्ति है?" सचमुच उस वंश में सभी राम-मंत्र के उपासक थे।

१९०६ ई० की पहली फरवरी की बात है। श्रीमाँ जयरामवाटी में थीं। एक भक्त ने जानना चाहा कि श्रीरामकृष्ण सनातन पूर्णब्रह्म हैं या नहीं? माँ के समर्थन करने पर भक्त ने फिर कहा, "ऐसे तो प्रत्येक स्त्री के लिए उसके स्वामी सनातन पूर्णब्रह्म हुआ करते हैं। मैं उस तरह नहीं पूछ रहा हूँ।" माँ ने उत्तर दिया, "हाँ, वे सनातन पूर्णब्रह्म हैं—स्वामी के नाते भी और ऐसे भी।" तब भक्त के मन में आया कि सीताराम या राधाकृष्ण जैसे अभिन्न हैं, वैसे ही श्रीरामकृष्ण और माँ

भी हैं, पर सामने देख रहे हैं उनके मानवोचित व्यवहार। मन के द्वन्द्व को मिटाने के लिए उन्होंने कहा, "तब तुम्हें जो साधारण स्त्रियों की भाँति रोटी बेलते हुए देख रहा हूँ, आखिर यह सब क्या है? माया या और कुछ।" माँ ने कहा "हाँ, माया ही तो है। माया यदि न होती, तो मेरी यह दशा क्यों? मैं तो बैकुण्ठ में नारायण की बगल में लक्ष्मी होकर रहती। लेकिन बात यह है कि भगवान नरलीला पसन्द करते हैं।"

फरवरी १९११ ई० में माँ ने दक्षिण में तीर्थयात्रा के दौरान रामेश्वर का दर्शन किया था। श्रीमाँ की तीर्थयात्रा के संगी और सेवक स्वामी धीरानन्द ने एक दिन सरलादेवी से कहा था कि अनाच्छादित रामेश्वर लिंग को देख श्रीमाँ सहसा बोल उठी थीं, "जैसा रख गयी थी, ठीक वैसा ही है।" पास में जो भक्त स्त्रियाँ थीं, उन्होंने पूछा था, "माँ, यह क्या बोली?" तब माँ ने आत्म-संवरण करके मुस्कुराते हुए कहा था, "वैसे ही कुछ मुँह से निकल गया।" रामेश्वर-दर्शन के बाद जब श्रीमाँ कलकत्ता आयीं, तब कोआलपाड़ा के केदार बाबू ने पूछा, "रामेश्वर आदि को कैसा देखा?" श्रीमाँ ने उत्तर दिया, "बेटा जैसे रख आयी थी, ठीक वैसे ही है।" उसी समय पास के बरामदे से गोलाप-माँ जा रही थीं। यह बात उनके कानों तक पहुँची। उन्होंने तुरन्त माँ के पास आकर पूछा, "ऐ, क्या बोली, माँ?" माँ ने जरा चौंककर जवाब दिया, "नहीं तो, बोलूँगी भला क्या? यही कहती हूँ कि तुम लोगों से जैसा सुना था, ठीक वैसा ही देखकर बड़ा आनन्द हुआ था।" गोलाप-माँ ने भी जोर देकर कहा "नहीं माँ, मैंने सब कुछ सुन लिया है, अब बात बदलने से क्या होगा? क्यों, केदार?" इतना कहती हुई वे चली गयीं तथा सबसे यह कह दिया।

भक्तों का विश्वास है कि जिन्होंने त्रेतायुग में श्रीरामचन्द्र की प्रेयसी, जन्मदुःखिनी सीतादेवी के रूप में अवतीर्ण हो समुद्र के किनारे बालुका-निर्मित शिवलिंग की पूजा की थी, वे ही फिर कलियुग में सर्वंसहा अशेष-कल्याणमयी भक्त-जननी के रूप में अवतीर्ण हुईं और स्व-प्रतिष्ठित लिंग को इतने समय के पश्चात् ज्यों का त्यों देख सहसा पारिपार्श्विक अवस्था को भूल गयीं और त्रेतायुग में उपनीत हुई थीं। इसीलिए उनका उस समय का अनुभव अज्ञात रूप से अपने आप इस प्रकार फूट पड़ा था।

वस्तुतः इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है कि जो परम आद्या शक्ति त्रेता में राम की परिणीता सीता के रूप में अवतरित हुई थी, वही परमा शक्ति कलियुग में श्रीरामकृष्ण की लीलासहधर्मिणी बनकर श्रीमाँ सारदा के रूप में आविर्भूत हुई।

क्या तुम सोचते हो कि मृत्यु होने के बाद भी मुझे तब तक छुटकारा मिल पायेगा, जब तक मेरी सारी सन्तानें, जिनका भार मैंने लिया है, मुक्त नहीं हो जातीं? मुझे तो उनके साथ निरन्तर रहना पड़ेगा। मैंने तो उनके सब कुछ का, उनके सारे पाप और पुण्य का भार लिया है। मैं उन लोगों को छोड़ नहीं सकती, जिन्हें मैंने अपनी सन्तान के रूप में स्वीकार किया है।

—श्रीमाँ सारदा

# जगन्माता की बहन श्रीशारदा देवी

—श्री रामधारी सिंह दिनकर

भगवान बुद्ध, भगवान महावीर, चैतन्य महाप्रभु और तुलसीदास, इन सभी संतों ने परमार्थ की उपलब्धि के लिए अपनी पत्नियों का त्याग किया था। इस सरणी में अन्य असंख्य संतों के भी नाम लिए जा सकते हैं। एक बार श्री अरविन्द से किसी शिष्य ने पूछा था, "जब संत पत्नी के साथ नहीं रह सकते, तब वे विवाह ही क्यों करते हैं?"

चोट श्री अरविन्द पर भी थी, क्योंकि उन्होंने भी तो एक प्रकार से अपनी सहधर्मिणी का त्याग ही कर रखा था। किन्तु प्रश्न के उत्तर में श्री अरविन्द ने कहा, "संत ऐसा इसलिए करते हैं कि विवाह में बँधते समय उन्हें अपनी नियति का ज्ञान नहीं रहता है।"

इससे यह ध्वनि निकलती है कि जिन्हें संत बनना है, उन्हें विवाह के बंधन में नहीं बंधना चाहिए। गांधीजी भी कहते थे कि "मोक्ष से दूर रहने के कारण मनुष्य को जन्म लेना पड़ता है तथा मोक्ष से और अधिक दूर होने के कारण आदमी विवाह करता है।"

किन्तु गांधीजी ने पत्नी का त्याग नहीं किया। बल्कि, जब चार पुत्र रत्न उन्हें प्राप्त हो गये, उन्होंने ब्रह्मचर्य का व्रत ले लिया और वे बार-बार कहते रहे कि मेरा व्रत मेरी पत्नी के सहयोग के कारण निभा है। वे यह भी कहते थे कि ब्रह्मचर्य की जो महिमा मुझे दिखाई पड़ी है, उससे बार-बार मुझे यह सोच कर पश्चाताप होता है कि ब्रह्मचर्य का व्रत लेने की बात मुझे आरम्भ में ही क्यों नहीं सूझी।

श्री अरविन्द की पत्नी बहुत चाहती थीं कि श्री अरविन्द उन्हें पान्डिचेरी जाकर अपने साथ रहने की अनुमति दे दें। किन्तु यह अनुमति अरविन्द ने उन्हें नहीं दी। तब मृणालिनी देवी श्री शारदा माता की शरण में गईं। कहते हैं, जब श्री अरविन्द को यह बात मालूम हुई कि मृणालिनी देवी को श्री शारदा माता का आशीर्वाद प्राप्त हो गया है, तब वे इसके लिए राजी हो गए कि मृणालिनी देवी पान्डिचेरी आकर रह सकती हैं। किन्तु विधाता को यह मंजूर नहीं था। मृणालिनी जी पाण्डिचेरी के लिए प्रस्थान करने ही वाली थीं कि कलकत्ते में उनका देहांत हो गया। अनुमान यह होता है कि जिस बात का भय प्रत्येक संत को होता है वह भय श्री अरविन्द को भी था और मृणालिनी जी को अनुमति उन्होंने तभी दी जब उन्हें विश्वास हो गया कि श्रीशारदा माता ने मृणालिनी जी को रक्षा का कवच पहना दिया है।

एक कथा यह भी है कि रज्जब जी को घर वालों ने विवाह के लिए राजी कर लिया था। लेकिन वे जब मौर पहन कर विवाह के लिए चले, उनके गुरु दादू दयाल ने कहा,

रज्जब, तैं गजब किया, सिर पर बांधा मौर।
आया था हरि भजन को, करै नरक की ठौर।।

बस, यह दोहा सुनना था कि रज्जब जी मौर फेंक कर घर से भाग गए। गृहस्थी तो उन्होंने नहीं बसाई, किन्तु गृहस्थाश्रम की उन्होंने प्रशंसा जरूर लिखी।

एक जोग में भोग है, एक भोग में जोग।
एक बुड़हिं वैराग्य में, इक तरहिं सो गिरही लोग॥

किन्तु सन्तों की जो औसत विपत्ति है, उसका आख्यान कबीर के इस दोहे में, मिलता है।

नारी तो हमहूं करी, तब ना किया विचार।
जब जानी तब परिहरी, नारी महा विकार॥

लेकिन इन सन्तों की पत्नियां क्या सोचती होंगी? यही न कि पतिदेव तो बड़े ही पवित्र और महान् उद्देश्य के लिए हमारा त्याग कर गए हैं। दोषी वे नहीं, हमीं है, क्योंकि हम सचमुच नरक की खान हैं।

किन्तु परित्यक्ता पत्नियों के भीतर एक और प्रतिक्रिया भी होती होगी जिसे मैथिलीशरणजी ने चैतन्य महाप्रभु की पत्नी विष्णुप्रिया के मुख से कहलाया है।

अबला के भय से भाग गए,
वे हम से भी निर्बल निकले।
नारी निकले तो असती है,
नर यती कहा कर चल निकले।

इस कठिन पृष्ठभूमि पर परमहंस श्रीरामकृष्ण और श्री शारदा माता का दाम्पत्य अद्भुत, अपूर्व और अत्यंत उच्च शिखर पर आसीन दीखता है। जब श्रीरामकृष्ण भावावेश में आने लगे, लोगों ने समझा, उन पर वात या उन्माद रोग का आक्रमण हो रहा है। इस रोग के शमन के लिए घर के लोगों ने वैद्य बुलबाया, ओझा-गुणी और तान्त्रिकों से गदाधार को दिखलाया, लेकिन गदाधर का रोग नहीं छूटा। निदान, मां चन्द्रादेवी ने यह निश्चय किया कि गदाधर का विवाह कर देना चाहिए।

विवाह के समय श्रीरामकृष्ण की आयु चौबीस साल की थी और साधना के पथ पर वे बहुत आगे जा चुके थे। अतएव मेरे जानते, श्री अरविन्द की यह उक्ति कि संत जिस समय विवाह करते हैं, उस समय उन्हें अपनी नियति का पता नहीं होता है, श्रीरामकृष्ण पर लागू नहीं होती है। बचपन से ही श्रीरामकृष्ण को अर्थकरी विद्या से घृणा थी और जिस समय उनका विवाह हुआ, उस समय तक तो वे ईश्वरार्पित हो चुके थे। और समस्त नारी जाति को माता समझने लगे थे। हम यह भी नहीं कह सकते कि श्रीरामकृष्ण चूंकि सरल व्यक्ति थे, इसलिए उनका विवाह जबर्दस्ती कर दिया गया। नहीं, जब चन्द्रादेवी को कहीं कोई लड़की पसन्द नहीं आई, तब घर भर को परीशान देखकर स्वयं रामकृष्ण ने ही कहा, "जयरामबाटी में रहने वाले रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या से मेरा विवाह होगा, यह कभी का निश्चित है।" निदान, लोग जयराम बाटी जाकर रामचन्द्र मुखोपाध्याय से मिले और उन्हीं की कन्या (शारदा) से गदाधर (श्रीरामकृष्ण) का विवाह हुआ। उस समय श्रीरामकृष्ण की आयु २४ वर्ष की और श्री शारदा माँ की आयु ६ वर्ष की थी।

पीछे, युवावस्था प्राप्त होने पर श्री शारदा माँ को लोगों के मुख से यह सुनकर चिंता होने लगी कि शारदा के पति पागल हैं, उन्हें उन्माद का रोग है। इस चिंता से व्याकुल होकर उन्होंने दक्षिणेश्वर जाने का निश्चय किया और कई दिनों तक पैदल चलकर वे दक्षिणेश्वर में अपने स्वामी की सेवा में उपस्थित हो गईं। कहते हैं, श्रीरामकृष्ण ने उन्हें अपने ही कमरे में वास दिया और अपने पास उन्हें बड़े ही सम्मान से रखा।

श्री शारदा माता जब दक्षिणेश्वर की यात्रा पर थीं, रास्ते में वे ज्वराक्रान्त हो गईं। उस रात उन्हें एक अनुभव हुआ। एक बार श्री शारदा माता ने श्रीरामकृष्ण के स्त्री-भक्तों को बताया था कि "मेरा शरीर ज्वर के दाह से जल रहा था और मैं बेसुध पड़ी थी। ऐसी अवस्था में मुझे ऐसा दिखाई दिया कि एक स्त्री मेरे सिरहाने के पास आकर बैठी है, उसका वर्ण काला है तथापि रूप उसका बहुत सुन्दर है। पास में बैठकर वह मेरे सिर पर हाथ फेरने लगी। उसके शीतल और कोमल हस्तस्पर्श से मेरा दाह कम पड़ने लगा। मैंने उससे पूछा, "देवी, आप कहाँ से आई हैं?" वह बोली, "दक्षिणेश्वर से"। मैं चकित होकर बोली, "क्या आप

दक्षिणेश्वर से आई हैं ? मैं भी वहीं जाने के लिए रवाना हुई हूँ। मेरी इच्छा है कि वहाँ जाकर उनके (श्रीरामकृष्ण के) दर्शन करूँ और उनकी सेवा में कुछ समय बिताऊँ। पर यह विचार एक ओर रहा और मैं यहाँ बीमार पड़ गई हूँ। हे देवि ! क्या मेरे भाग्य में उनके दर्शन हैं" ? वह स्त्री बोली, "हैं नहीं तो ? हां, अवश्य हैं। तू अब अच्छी हो जायगी, वहाँ जायगी, उनके दर्शन करेगी, सब कुछ अच्छा ही अच्छा होगा। तेरे ही लिए तो मैंने उन्हें वहाँ रोक रखा है।" मैं बोली, "सच ? पर हे देवि, आप मेरी कौन होती हैं ?" वह बोली, 'मैं तेरी बहन हूँ।' इतना संवाद होने के बाद मैं होश में आ गई।"

परमहंस रामकृष्ण का जैसे संसार की अन्य नारियों के प्रति मातृभाव था, उसी प्रकार उस रमणी को भी वे अपनी माता ही समझते थे जिसके साथ उनका विवाह हुआ था। श्री शारदा माँ पति के कमरे में कई महीने सोई थीं। एक रात जब वे अपने पति का पाँव दबा रही थीं, उन्होंने पति से पूछा, "अच्छा, आप मुझे क्या समझते हैं ?" श्रीरामकृष्ण ने कहा, "जो माता जगत का निर्माण करके मन्दिर में खड़ी हैं, जो माता इस शरीर को जन्म देकर नौबत खाने में ठहरी हुई हैं, वही माता इस समय मेरा पांव दबा रही हैं।"

एक रात श्री शारदा माँ श्रीरामकृष्ण के कमरे में सोई हुई थीं और श्री रामकृष्ण जगे, बैठे उन्हें देख रहे थे। सहसा उनके मन में कोई भाव उठा। वे अपने आप को संबोधित करके बोल उठे, "अरे मन, जिस नारी-शरीर के लिए सांसारिक लोग व्याकुल रहते हैं, वह नारी-शरीर यही है। भीतर एक और बाहर दूसरा, ऐसा मत कर। यदि यह शरीर तुझे चाहिए तो वह यहीं पास पड़ा है।" ऐसा कह कर उन्होंने श्री शारदा माँ को छूने के लिए अपना हाथ बढ़ाया। किन्तु, छूने के पहले ही उन्हें समाधि लग गई और वह इतनी गहरी लगी कि प्रातःकाल तक वे समाधि में ही रह गए।

(श्री सारदा संघ, पटना के सौजन्य से)

श्रीरामकृष्ण कहा करते थे कि उनका ब्रह्मचर्य-व्रत इसलिए निभ सका कि उनकी पत्नी ने पूरे संयम से उनका साथ दिया। "वही (पत्नी) यदि इतनी शुद्ध और पवित्र न होती और कामासक्ति से विवेकहीन बन जाती, तो हमारे संयम का बाँध टूट कर देहबुद्धि का उदय हो जाता या नहीं यह कौन कह सकता है ? उसके साथ एकांत में रहते हुए मुझे निश्चय हो गया कि विवाह के बाद मैंने जो श्री जगदम्बा से अत्यन्त व्याकुलता के साथ जो प्रार्थना की थी कि हे माता, इनके मन से सभी काम-वासना नष्ट कर दे, उस प्रार्थना को माता ने अवश्य सुन लिया।"

एक बार श्रीरामकृष्ण ने अपनी पत्नी की षोडशी पूजा भी की थी। उस दिन महाकाली के आसन पर उन्होंने श्री शारदा माँ को बिठाया था और स्वयं पुजारी के स्थान पर बैठे थे। और उन्होंने प्रार्थना की थी, "हे बाले, हे सर्वशक्तिअधीश्वरी माते, हे त्रिपुर-सुन्दरी, सिद्धि का द्वार खोल दे और इसका (पत्नी का) मन और शरीर पवित्र करके इसमें प्रकट हो और सब का कल्याण कर।" फिर उन्होंने "शिवगेहिनी, गौरी और नारायणी" कह कर अपनी पत्नी को प्रणाम किया और दोनों समाधि में चले गये।

वैराग्य लेने वाले पुरुष नारियों का अपमान ही तो करते थे ? श्री रामकृष्ण ने अपनी पत्नी को साथ रख कर, उन्हें सिद्धि प्रदान कर नारी-जाति के प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। उनके जीवन से शिक्षा यह निकलती है कि विवाह के बाद भी पति-पत्नी को ब्रह्मचर्य का ही जीवन बिताना चहिए। किन्तु यह लगभग अमानुषिक कार्य है। इसीलिए श्रीरामकृष्ण कहा करते थे, जब मैं सोलह आने नाच नाचूँगा, तब कहीं तुम लोग एकाध आने नाच नाच सकोगे। वह एकाध आने नाच क्या हो सकता है ? अपनी पत्नी को छोड़कर और किसी नारी के पास मत जाओ। श्रीरामकृष्ण यह भी कहते थे कि दो-एक संतान उत्पन्न कर लेने के बाद पति और पत्नी को भाई-बहन के समान रहना आरम्भ कर देना चाहिए। और श्री शारदा माता का भी यही उपदेश था। ◻

# नारीमुक्ति स्वरूपा श्रीमाँ सारदा

—स्वामी सोमेश्वरानन्द
रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना।

(प्रस्तुत निबंध श्रीमत स्वामी सोमेश्वरानन्दजी की सद्यः प्रकाशित पुस्तक 'लोक जीवने श्रीरामकृष्ण' के कुछ अंशों का संकलित रूप है, जिसमें माँ सारदा के जीवन के कुछ पक्षों के नये क्षितिज का विद्वत्तापूर्ण उद्घाटन हुआ है।—सं०)

श्रीरामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द ने भारत तथा विश्व के इतिहास में जो महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया है उसे पूरब और पश्चिम के देशों के अनेक मनीषियों और इतिहासकारों ने स्वीकार कर लिया है। किन्तु इसके साथ ही यह प्रश्न उठता है कि इन लोगों के निकट सारदामणि देवी की क्या भूमिका थी? वे क्या केवल श्रीरामकृष्ण की सहधर्मिणी एवं रामकृष्ण-आन्दोलन की संघ-जननी थीं अथवा नवयुग की सूचना देनेवाली एक विशेष अध्याय थीं। उनके जीवन का, ऐतिहासिक मूल्यायन और सामाजिक तात्पर्य के संदर्भ में, विशेष विवेचन नहीं हुआ है।

स्कूल का सर्टिफिकेट या कॉलेज की डिग्री उन्हें (श्रीसारदा को) नहीं रहने पर भी उनके जीवन में सर्वदा ज्ञान के प्रति अनुराग देखा जाता है। बालिका अवस्था में उनके लिखना-पढ़ना शुरू करने पर उनके भान्नेय हृदय ने उसमें बाधा दी, आत्मीया लक्ष्मी पाठ-शाला से पढ़कर आने पर उनको घर पर पढ़ातीं, दक्षिणेश्वर में रहने के समय भव मुखोपाध्याय की पत्नी प्रतिदिन आकर उन्हें पढ़ातीं। बाद के दिनों में माँ-सारदा अपनी भतीजी माकू और राधू को स्वयं पढ़ातीं; गौरी माँ के आश्रम की छात्राओं को लिखने-पढ़ने में भी वे खूब उत्साहित करतीं; अपने अल्प-शिक्षित शिष्य-शिष्याओं को भी वे सदैव पढ़ने-लिखने में उत्साहित करतीं। केवल पुस्तकीय विद्या ही नहीं, समाज में और संसार में कहाँ क्या हो रहा है इस सम्बन्ध में भी वे कौतूहली थीं, शिष्य-शिष्याओं को भी इस विषय में उत्साह प्रदान कर कहतीं, "जहाँ जाओ, सब ओर नजर रखकर चलो कि कहाँ क्या हो रहा है।" उनके चरित्र की यह जो विशेषता थी, उसके साथ ही मिल गयी थी उनकी साधारण बुद्धिमत्ता। श्रीरामकृष्ण की शिक्षा ने उन्हें अवश्य ही सहायता दी थी, किन्तु इस शिक्षा-ग्रहण में भी थी उनकी निजता। असाधारण पति-निष्ठा जहाँ अन्यान्य नारी की अपनी स्वाधीनता को संकुचित कर देती है वहाँ माँ-सारदा ने अपनी मौलिकता देखी थी। सती-साध्वी नारी की भाँति पति का अनुसरण कर भी उन्होंने अपनी स्वाधीनता को तिलांजलि नहीं दी, वरन् जहाँ कहीं आवश्यक समझतीं अपने विचार दृढ़ता पूर्वक व्यक्त करती थीं। श्रीरामकृष्ण के भावी संन्यासी शिष्यों को अधिक खिला देना, पूर्वकाल में जिसका चरित्र अच्छा नहीं था ऐसी एक महिला के हाथों खाना भेजना, मुक्त हस्त से फलों का वितरण कर देना आदि अनेक सारी घटनाएँ पायी जाती हैं जहाँ उन्होंने श्रीरामकृष्ण के मत के विरुद्ध अपने मतामत को दृढ़ भाव से व्यक्त किया था। माँ-सारदा ने अपनी पति-निष्ठा की रक्षा अपनी स्वाधीनता और मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए ही की थी। उनके इस स्वाधीन विचार की अभिव्यक्ति उनके परवर्ती जीवन में भी देखी जाती है।

### नारी-मुक्ति की स्वरूपिणी

तत्कालीन युग में निश्चय ही नारियों में रूपान्तर की कुछ छाप लगी थी, किन्तु उस रूपान्तर का प्रकृत चित्र कैसा था? कोई अँग्रेजी कविता लिखती, कोई घोड़े पर सवार हो मैदान में हवा खाने जाती। किन्तु प्रकृत स्वाधीनता में ये सब गौण हैं। मानसिक रूपान्तर घटित नहीं होने पर, स्वाधीन विचार और कर्म में प्रवृत्त नहीं होने पर प्रकृत स्वाधीनता तो आ नहीं पाती है। तत्कालीन मनीषीगण और सामाजिक नेतागण नारी-मुक्ति

का जैसा विचार करते थे वह था सीमित—नारी जहाँ पुरुष के पास स्वाधीन खड़ी होती। बंकिमचन्द्र के 'चन्द्रशेखर' उपन्यास में जिस शैवालिनी ने एक दिन गंगा में पैठ प्रताप को छूकर शपथ ली थी 'आज से तुम्हें भूलूंगी,' वही शैवालिनी लम्बी कृच्छ्र साधना के बाद उपन्यास के अन्त में प्रताप के पास ही आश्रय चाहती है। विद्या के तेज से शक्ति में महीयसी देवी चौधुरानी भी एक ही जैसे पथ की पथिक है। माईकेल मधुसूदन के काव्य में तेजस्विनी प्रमिला वीरता के दर्प में कह उठती है "सखि, मैं क्या डरती हूँ भिक्षुक राघव से?" किन्तु इस वीरता का मूल स्रोत है—"रावण श्वसुर मम मेघनाद स्वामी।" शरत्चन्द्र चट्टोपाध्याय में भी महीयसी नारी का आविर्भाव हुआ है, किन्तु वह बार-बार हार क्यों जाती है? पल्लीसमाज की रमा ने सामाजिक अन्याय के विरुद्ध निश्चय ही विद्रोह किया था, किन्तु उपन्यास के अन्त में रमा अपना संग्राम समाप्त किये बिना ही काशी चली जाती है। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने निश्चय ही स्वाधीन नारी का चित्र आँकने की चेष्टा की थी। किन्तु, अपने वास्तविक जीवन में क्या वे उस आदर्श के विश्वासी थे? उन्होंने अपनी तीन पुत्रियों का विवाह अल्प वय में ही कर दिया था। इस प्रसंग में प्रताप कुमार मुखोपाध्याय ने लिखा है, 'रवीन्द्रनाथ ने इतने समय तक बाल-विवाह के विरुद्ध गद्य-पद्य में अनेक रचना करके अन्त में स्वयं उसी बात का समर्थन क्यों किया—वाणी और जीवन के बीच यह असंगति क्यों, इसका कोई सदुत्तर नहीं मिलता। (रवीन्द्र जीवनी, खंड २, पृ० ३०) मैत्रेयी देवी ने रामकृष्ण-विवेकानन्द-प्रसंग में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ उनकी विवेचना में कुछ लिपिबद्ध कर अपना मन्तव्य दिया है—"हमलोगों का भी विश्वास है कि कोई भी नारी सम्पूर्ण रूप में स्वाधीन नहीं हो पाती।" (रवीन्द्रनाथ : गृहे ओ विश्वे--कलकत्ता १३८३, पृ० ९२)

माँ-सारदा किन्तु, नारी को देखना चाहती थीं प्रकृत स्वाधीन सत्ता की अधिकारिणी के रूप में, जो नारी अपनी निजी समस्या का स्वयं ही समाधान कर सकेगी, किसी भी पुरुष की सहायता लिये बिना। गौरी माँ ने जब नारी-शिक्षा के लिए एक आश्रम-विद्यालय की प्रतिष्ठा की तब माँ-सारदा ने उनसे कहा था—"गौरी, तुम लड़कियों को समझा दो कि तुमलोगों ने केवल इस कोठी का धान उस कोठी और उस कोठी का धान इस कोठी में रखने के लिए नहीं जन्म लिया है, इच्छा करने से तुमलोग भी असम्भव को सम्भव करो।" नारी-शिक्षा के उद्देश्य के सम्बन्ध में कितनी सहज बात उन्होंने कितने गंभीर तात्पर्य से कही थी! निवेदिता के स्कूल की सुधीरा देवी आदि अनेक शिक्षिकाओं को स्वाधीन रूप से समाज-सेवा के लिए व्रत धारण करने वाली देखकर माँ-सारदा बहुत आनन्द व्यक्त करती थीं। एक स्त्री भक्त द्वारा अपनी अविवाहित पुत्रियों के लिए दुश्चिन्ता व्यक्त करने पर उन्होंने कहा, "विवाह नहीं करा पाती हो, इसके लिए इतनी सोच करने से क्या होगा? निवेदिता के स्कूल में रख दो—लिखना-पढ़ना सीखेगी, अच्छी तरह रहेगी।" उनकी एक और उक्ति--"मद्रास की दो लड़कियाँ, बीस-बाइस वर्ष की उम्र, विवाह नहीं हुआ। निवेदिता के स्कूल में हैं। आहा, वे सब किस प्रकार कार्य-क्रम सीख रही हैं! और हमलोग! यहाँ के लोग आठ वर्ष होते न होते कहते हैं : विवाह कर दो, विवाह कर दो।" राधू के विवाह के पहले अनेक भक्तों ने माँ-सारदा को परामर्श दिया था कि मास्टर महाशय (रामकृष्ण वचनामृत के लेखक) को उसके लिए उपयुक्त वर ढूँढ़ने को वे कहें। उत्तर में उन्होंने कहा था, "मैं किसी को बंधन में डालने के लिए कह नहीं पाऊँगी।" इन सारी घटनाओं और उक्तियों से समझा जा सकता है कि वे नारी-मुक्ति के सम्बन्ध में कितनी सचेतन थीं। विवाह कर संसार में प्रवेश करने को उन्होंने कम महत्व नहीं दिया, किन्तु वे आनन्द में उच्छ्वसित हो उठती थीं जब वे यह देखती थीं कि लड़कियाँ विवाह को ही चरम लक्ष्य नहीं मानकर स्वाधीन रूप से अपने पाँवों पर खड़ी होकर समाज सेवा में आत्मनियोग कर रही हैं।

माँ का अपना जीवन इसी का उदाहरण था। राम कृष्ण मिशन और सारदेश्वरी आश्रम की भाँति दो प्रतिष्ठानों की संघमाता थीं वे। इस तरह के दो वृहत् संगठनों के परिचालन का उदाहरण हमलोग तत्कालीन युग में अन्य किसी में तो नहीं ही देखते हैं, इतिहास में भी ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं। माँ-सारदा ने इसके साथही यह नियम कर दिया था कि सारदेश्वरी आश्रम के सारे कार्यों का संचालन करेंगी संन्यासिनियाँ और ब्रह्मचारिणियाँ, प्रतिष्ठान की सर्वोच्च संचालिका के पद पर भी ऐसी ही एक नारी रहेंगी, रामकृष्ण मिशन को कोई संन्यासी इनलोगों को कोई भी निर्देश नहीं दे पायेंगे। माँ-सारदा के इस निर्देश के अनुसरण पर ही बाद में रामकृष्ण-सारदा मिशन का गठन हुआ। प्रश्न उठता है कि बौद्ध संघों एवं ईसाई रोमन कैथोलिक चर्चों में भी संन्यासिनियाँ हैं एवं वे ही प्रतिष्ठानों का संचालन करती हैं, अतएव इसमें माँ सारदा की विशेषता कहाँ है ? विशेषता यहीं है कि बुद्धदेव या कैथोलिक पोप कोई भी नारी को सर्वोच्च पद पर प्रतिष्ठित नहीं होने देते। निश्चय ही नारियों को संन्यास-ग्रहण करने का अधिकार बुद्धदेव ने दिया था, किन्तु उनके साथ ही वे नियम बना गये थे कि भिक्षुणियाँ सदैव भिक्षु के निर्देश पर कार्य करेंगी एवं संघ के सर्वोच्च पद पर भिक्षुणियाँ प्रतिष्ठित नहीं हो पायेंगी। यही नियम कैथोलिक चर्च में भी है। पोप के आसन पर एक मात्र पुरुषों का ही अधिकार है, संन्यासिनी (नन,Nun) केवल पोप नहीं हो सकती; यही नहीं; आर्चबिशप, बिशप, यहाँ तक कि पुरोहित(प्रीस्ट) भी नहीं हो पातीं। विगत ढाई हजार वर्षों में विश्व के धर्मीय इतिहास में माँ-सारदा ही सर्वप्रथम नारी को यह दुर्लभ सम्मान दे गयीं। इसीलिए वे इतिहास की एक अनन्या चरित्र हैं। नारी अपनी शक्ति से उठकर खड़ी हो सके, समाज में एक क्रियाशील भूमिका पुरुष की सहायता के बिना निभा पाये—इसे उन्होंने अपने जीवन में, वास्तविक क्रिया-कलाप के माध्यम से एवं सारदेश्वरी आश्राम की संन्यासिनियों के द्वारा दिखा दिया।



## ग्राहकों को विशेष सूचना

(१) जिन ग्राहकों का वार्षिक चन्दा इस अंक के साथ समाप्त हो रहा है, वे कृपया अगले वर्ष के लिए अपना २०) चन्दा संलग्न मनिआर्डर फार्म द्वारा भिजवा दें।

(२) जिन ग्राहकों को प्रायः डाक की अव्यवस्था के कारण पत्रिका न मिलने की शिकायत रहती है, उनसे अनुरोध है कि वे यदि प्रति अंक का अतिरिक्त व्यय वहन करके पत्रिका वी. पी से मँगवाएँ, तो सभी अंक उन्हें सुरक्षित मिल जाएँगे। ग्राहकों पर यह अतिरिक्त व्यय-भार पड़ने का हमें दुःख है, पर पत्रिका की सुरक्षित प्राप्ति का यही सरल उपाय है। आशा है, आप हमें इसमें सहयोग देंगे। जिन ग्राहकों को हमारा यह सुझाव मान्य है, वे कृपया हमें इसकी सूचना दें।

(३) पत्र लिखते या मनिआर्डर करते समय अपनी ग्राहक—संख्या एवं अपने नाम और पूरे पते का स्पष्ट रूप से अवश्य उल्लेख करें।

(४) १९८४ ई० में विवेक शिखा का जनवरी अंक 'स्वामी विवेकानन्द अंक' के रूप में प्रकाशित होगा। मार्च-अप्रैल का संयुक्तांक हम 'श्रीरामकृष्ण अंक' के रूप में प्रकाशित करेंगे। इसी भाँति नवम्बर-दिसम्बर का संयुक्तांक 'श्रीसारदा अंक' के रूप में प्रकाशित होगा।

(५) विवेक शिखा के वार्षिक सदस्य जनवरी माह से ही बनाये जाते हैं।

# करुणामयी माँ सारदा

— शितिकंठ बोधिसत्व
छपरा (बिहार)

गौरीशंकर, सीताराम और राधाकृष्ण की तरह सारदा-रामकृष्ण भी सनातन एवं पतित-पावन भगवन्नाम हैं। जिस तरह शक्ति के बिना शिव प्रभावशून्य शव हैं, सीता के बिना राम की लोक-मंगलकारी मर्यादा-लीला की कल्पना नहीं हो सकती तथा राधा के बिना कृष्ण के प्रेमावतार की परम दिव्य रसमयता सिद्ध नहीं होती, उसी तरह श्री माँ के बिना युगावतार भगवान रामकृष्ण की धर्म-संस्थापन की उत्कृष्ट भगवल्लीला संपन्न नहीं हो सकती थी। अपनी प्रसिद्ध स्तुति-'आनन्द लहरी'— में आदि शंकराचार्य ने शिव और शक्ति के परस्पर अभेद संबंध को प्रथम श्लोक में ही उजागर किया है :

"शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुं
न चेदेवं देवो न खलु कुशलः स्पन्दितुमपि।"

अर्थात् "शक्ति के सहयोग एवं समर्थन से ही शिव जगत की संरचना करते हैं, अन्यथा वे एक प्राणहीन शव की तरह ही हैं, स्वयं हिलने में भी असमर्थ।" इसी तरह, स्वामी अभेदानन्द ने श्रीमाँ के प्रति अपनी स्तुति एवं प्रणाम-मंत्र का निवेदन करते हुए कहा है :

"यथाग्नेर्दाहिका शक्ती रामकृष्णे स्थिता हि या।
सर्वविद्या स्वरूपां तां सारदां प्रणमाम्यहम्।।"

अर्थात् "जैसे आग में दाहिका शक्ति सदैव उपस्थित रहती है, उसी प्रकार जो श्री रामकृष्ण में नित्य स्थित हैं, उन समस्त विद्याओं की स्वरूपिणी माँ सारदा को मैं प्रणाम करता हूँ।"

भगवान रामकृष्ण देव में राम एवं कृष्ण दोनों अवतारों के लोक मांगल्य तथा जगदगुरूत्व का समवेत प्राकट्य हुआ था। उनमें एक ही साथ श्री राम की धर्म रक्षक मर्यादाओं की संजीवनी तथा श्री कृष्ण की धर्म-संस्थापक गुरुता एवं धर्म-पोषक चिदानंदमयता का प्राकट्य हुआ था। श्रीरामकृष्ण के साथ श्रीमाँ का अभेद संबंध नित्य, सनातन और परम दिव्य है। गौरी शंकर, सीताराम तथा राधाकृष्ण के नित्य अभेद संबंध की तरह यह भी आध्यात्मिक दिव्यता के रहस्यावरणों में गुप्त है, और उनकी, विशेषतः श्रीमाँ की, कृपा से ही उसमें प्रवेश पाने की पात्रता का सृजन हो सकता है। अर्थात्, यह संबंध बोधगम्य या बुद्धिगम्य न होकर श्रीमाँ की कृपा से ही उच्चतम पात्रता के उपलब्ध होने पर अनुभवगम्य हो सकता है। स्वामी अभेदानन्द ने श्रीमाँ की स्तुति में लिखा है :

"जानकी राधिका रूप धारिणीं सर्वमंगलाम्।
चिन्मयीं वरदां नित्यां सारदां मोक्षदायिनीम्।।"

अर्थात् "भगवती सीता और राधा का रूप धारण करनेवाली श्रीमाँ सब के लिए कल्याणकारिणी हैं। वे, भगवती सारदा, चिन्मयी हैं, वरदायिनी हैं, नित्य हैं, और संसार के प्राणियों को मोक्ष प्रदान करनेवाली हैं।"

परम दिव्य, चिदानंदमयी, विज्ञानमयी, महा-विद्यास्वरूपिणी श्रीमाँ स्वयं कहा करती थीं : "मैं और श्रीठाकुर एक हैं।" आदिशंकर-कृत स्तुति में आया है :

"घृतक्षीर द्राक्षा मधुमधुरिमा कैरपि पदैं—
विशिष्यानाख्येयो भवति रसना मात्र विषयः।
तथाते सौन्दर्यं परमशिव दृङ्मात्र विषय :
कथङ्कारं ब्रूमः सकलनिगम गोचर गुणे।।"

अर्थात् "घी, दूध, दाख और मधु की मधुरता को किसी भी शब्द से विशेष रूप से नहीं बताया जा सकता, उसे तो केवल जिह्वा ही जानती है। इसी प्रकार

तुम्हारा सौन्दर्य केवल भगवान शिव के नेत्रों का ही विषय है, उसे हम कैसे बतावें ? हे देवि ! तुम्हारे गुणों का वर्णन तो सारे वेद भी नहीं कर सकते ।"

परमशिवस्वरूप श्रीरामकृष्ण देव ही परमचिति-स्वरूपिणी श्रीमाँ को जानते हैं—अन्य कोई नहीं। स्वामी सारदानन्द ने श्रीरामकृष्ण लीलामृत में लिखा है—"एक दिन उनके पैर दबाते-दबाते माताजी ने उनसे एकाएक पूछा, 'मुझको आप कौन समझते हैं ?' श्रीरामकृष्ण बोले, "जो माता उस काली-मंदिर में हैं··· वही यहाँ पर इस समय मेरे पैर दबा रही हैं। तू मुझे, सचमुच ही, सदा साक्षात आनंदमयी के रूप में दिखायी देती हैं।" अपनी आध्यात्मिक साधनाओं और अनुभूतियों की चर्चा करते हुए, श्रीरामकृष्ण कहते थे : "इसका श्रेय उनको भी (श्रीमाँ को) उतना ही है जितना मुझे।" अन्य अवसर पर श्रीरामकृष्ण ने उनके सम्बन्ध में बताया था। "वे (श्रीमाँ) सारदा अर्थात् सरस्वती हैं। ज्ञान प्रदान करने के लिए उनका आगमन हुआ है। वे ज्ञानप्रदायिनी हैं और परम विशिष्ट ज्ञान से संपन्न हैं।" स्पष्ट है कि श्रीठाकुर का यह दृढ़ विश्वास था कि श्रीसारदा देवी मानवीय विग्रह में साक्षात् भगवती माता थीं और वे उनके प्रति अपने सम्बन्ध में इसी भाव से बरतते थे।

इस अद्भुद्, अद्वितीय अभेद सम्बन्ध की परम दिव्य आध्यात्मिक गुह्यता में कृपा-पात्रों का ही प्रवेश संभव है—यह एक सामान्य बात लग सकती है, किन्तु यह तो एक असामान्य प्रत्यक्ष है कि श्रीमाँ को माँ कहकर पुकार लेने वाले सभी वर्ण, संप्रदाय, जाति, धर्म या राष्ट्रीयता के नर-नारी उनकी सहज, ममतावत्सल करुणा-कृपा के अधिकारी हो जाते हैं। इतना ही नहीं, श्री ठाकुर का परम रूपांतरणकारी सान्निध्य उन्हीं की उदार वत्सलता का महाफल है। आदि शंकराचार्य ने अपनी स्तुति में निवेदन किया है :

अयः स्पर्शे लग्नं सपदि लभते हेमपदवी
यथा रथ्यापाथः शुचि भवति गङ्गौघमिलितम्।
तथा तत्तत्पापरति मलिनमन्तर्मम यदि
त्वयि प्रेम्णासक्तं कथमिव न जायेत विमलम् ॥

अर्थात्, "जिस प्रकार लोहा पारस से छू जाने पर तत्काल सोना बन जाता है और गलियों के नालों का जल गङ्गाजी में पड़कर पवित्र हो जाता है : उसी प्रकार भिन्न-भिन्न पापों से मलिन हुआ मेरा अन्तःकरण यदि प्रेमपूर्वक तुममें आसक्त हो गया तो वह कैसे निर्मल नहीं होगा ?"

इसी तरह स्वामी अभेदानन्द ने श्रीमाँ की स्तुति में निवेदन किया है :

"स्वक्रोडन्यस्त हस्तां च ज्ञानभक्तिप्रदायिनीम्।
शुभ्रां ज्योतिर्मयीं जीव पाप संतापहारिणीम् ॥"

अर्थात्, "अपनी गोद में हाथों को वे रखे हुई हैं तथा ज्ञान और भक्ति प्रदान करनेवाली हैं। वे परम कान्तियुक्त, ज्योतिर्मयी हैं तथा जीवों के पाप-संताप को हरनेवाली हैं।"

इस तरह स्पष्ट है कि समर्पण, भक्ति तथा प्रेम के द्वारा ही श्रीमाँ की कृपा का पात्र हुआ जा सकता है। उनके कृपा-कटाक्ष से जन्म-जन्मान्तर के पाप-ताप तत्काल ही विलीन हो जाते हैं और जीवमात्र जीवन-मुक्ति, विदेह-मुक्ति या कैवल्यपद का अधिकारी हो सकता है। आवश्यकता है, उनके प्रति सरलतापूर्वक सम्पूर्ण समर्पण की—'त्वयि प्रेम्णासक्तं' की, जैसा श्रीशंकराचार्य ने अपनी स्तुति में कहा है।

स्वामी सारदानन्द श्रीमाँ के विशिष्ट भक्त थे। वे अपने को श्रीमाँ के कलकत्ता-स्थित निवास का द्वारपाल मात्र समझकर संतुष्ट रहते थे। भारत में शक्ति की उपासना पर प्रणीत अपनी प्रसिद्ध पुस्तक श्रीमाँ को समर्पित करते हुए उन्होंने लिखा है : "जिनके कृपा-कटाक्ष से ग्रंथकार प्रत्येक नारी रूप में भगवती माता के प्राकट्य का अनुभव कर सका—उन्हीं के पादारविन्द में पूर्ण विनम्रता एवं भक्ति से यह ग्रंथ समर्पित है।" स्वामी सारदानन्द न केवल अपने अद्वितीय ग्रंथ 'श्रीरामकृष्ण लीला प्रसंग' के लिए प्रसिद्ध हैं, बल्कि भारत में शक्ति की उपासना पर लिखित 'भारत में शक्ति-पूजा' के लिए हमें उनके प्रति विशेष कृतज्ञता

का भाव होता है। इसमें जो प्रारम्भ में ही ग्रंथकार का 'उत्सर्ग' है, श्रीमाँ की दिव्य महिमा का ज्वलंत उल्लेख करता है। स्वामी सारदानन्दजी भक्तिपूर्ण चित्त से समर्पण करते हैं श्रीमाँ के श्री चरणकमलों में अपनी इस पुस्तक को। वे कहते हैं कि श्रीमाँ की करुणा-दृष्टि से वे संसार की सभी नारी मूर्त्तियों में श्री-श्री जगदम्बा की विशेष शक्ति के प्रकाश की उपलब्धि करके धन्य हुए थे। जो साधन राज्य में प्रवेश कर चुके हैं, इस तथ्य से अवगत हैं कि उपासना या साधना कोई भी क्यों न हो, वह वस्तुतः शक्ति की ही उपासना है। स्वामी सारदानन्द ने लिखा है: ".....शक्ति-पूजा में ही सारा संसार अनादि काल से लगा हुआ है। शक्ति की आराधना के अतिरिक्त संसार में अन्य किसी प्रकार की उपासना कभी नहीं हुई और न होगी। जड़, चेतन, सभी युग-युगान्तर से जीवन भर शक्ति की आराधना में व्यस्त रहकर भी पूजा समाप्त नहीं कर सके और न कभी कर सकेंगे। यदि कभी कर भी सके तो वह शक्ति की ही सहायता से।" श्री दुर्गासप्तशती में श्रीजगदम्बा की यह महिमा उल्लिखित हुई है:

"सैषा प्रसन्ना वरदा नृणां भवति मुक्तये।"

श्रीमाँ सदैव परा विद्या प्रदान करने वाली महा विद्या शक्ति का मानव-अधिष्टान होकर भी असीम करुणामयी और आकाश की तरह अनन्त उदार थीं। वे धरती माता की तरह अत्यंत सहनशील तथा गंगा, गीता आर गायत्री की तरह सर्वांशतः पवित्र थीं। वे पवित्रता-स्वरूपिणी, विज्ञानमयी, जगन्माता होकर भी पूर्ण कर्त्तव्यनिष्ठ, कार्यकुशल तथा वृहत् योजनाओं और कार्यों के संचालन का महान दायित्व सहज कर्मठता से निभाने वाली थीं। वे अपने महाकाव्य रूप अदभुद् जीवन के अनेक स्कंधों में आदर्श पुत्री या आदर्श कन्या, आदर्श बहन, आदर्श पत्नी. आदर्श नारी तथा, सबसे अधिक, आदर्श माता के रूप में भारतीय संस्कृति की उच्चतम महिमा की जीवंत मूर्त्ति थीं। उनकी नित्य-प्रति की जीवन-विधा इतनी मौन और आडंबर शून्य थी कि अपनी सामान्यता और घटना शून्यता के कारण वह चकराने वाली लगती है। ऊपरी स्तर पर देखने से उसमें कुछ भी विशिष्ट या स्पष्ट रूप से चौंकाने वाला नहीं लगता, किन्तु उनके हृदय की अतल गहराई में ईश्वरीय चेतना की दिव्य आभा छिटकती रहती थी। श्रीरामकृष्णदेव के लिए तो वह मानव-देह में प्रकट आनंदमयी भगवती माता थीं।

आदि शक्तिमयी, वेदत्रयी-स्वरूपिणी श्रीमाँ की महिमा का वर्णन कल्पनातीत है, शब्द वैखरी की सीमाओं के पार है, असंभव है। श्रीपरमहंसदेव के संदेश के क्रमिक प्रसार के साथ-साथ निकट और दूर तथा पूरब और पश्चिम के बहुसंख्य भक्त उन्हें अपनी पूजा और श्रद्धांजलि समर्पित करने तथा उनसे दीक्षा लेने के लिए जमा होते थे। उनका करणार्द्र मुखमंडल और प्रसाद पूरित आशीष उनलोगों के हृदयों को जीत लेता था। उनकी उपस्थिति ही उन्हें उच्च आध्यात्मिक स्तर पर आसीन कर देती थी--मानों वे साक्षात भगवती माता के सान्निध्य में हों। स्वामी विवेकानन्द ने अपनी अद्वितीय, ओजस्वी भाषा में कहा है: "तुमने अभी तक श्रीमाँ के जीवन का आश्चर्यजनक महत्व और उनकी महिमा को नहीं समझा है। शक्ति के बिना संसार का उद्धार नहीं हो सकता.....माँ सारदा का उद्भव उस आश्चर्यजनक शक्ति को पुनर्जीवित करने के लिए हुआ है। और उनको केन्द्र बनाकर पुनः अनेक गार्गी एवं मैत्रेयी का उद्भव और विकास संभव है।', वस्तुतः श्रीमाँ का उद्भव दिव्य, लोकोत्तर और परम आध्यात्मिक है। "श्रीदेव्यथर्वशीर्षम्" में जगदम्बा दुर्गा की महिमा के संदर्भ में बताया गया है: "तस्याः स्वरूपं ब्रह्मादयो न जानन्ति तस्मादुच्यते अज्ञेया।" अर्थात् जिसका स्वरूप ब्रह्मादि भी नहीं जानते, और इस कारण जो 'अज्ञेया, कही गयी हैं। भगवती दुर्गा की महिमा फिर इस प्रकार बतायी गयी है: "मन्त्राणां मातृकादेवी शब्दानां-ज्ञान रूपिणी। ज्ञानानां चिन्मयातीता शून्यानां शून्यसाक्षिणी।" अर्थात् "सब मन्त्रों में मातृका—मूलाक्षर रूप से रहनेवाली, ज्ञानों में 'चिन्मयातीता, और शून्यों में शून्यसाक्षिणी हैं भगवती दुर्गा, जिनसे श्रेष्ठ और कहीं कुछ नहीं है।

सन् १९१२ ई० में श्रीमाँ के आदेश से दशभुजी दुर्गा-पूजन का आयोजन बेलुड़ मठ में हुआ था। स्वामी प्रेमानन्द की विशेष प्रार्थना से श्रीमाँ ने पूजा के चार-पाँच दिन बेलुड़ में रहना स्वीकार किया था। आनन्द-मयी के आने की खुशी में साधु-भक्तों के मन में आनन्द का सुर बज रहा था। स्वामी अपूर्वानन्द ने लिखा है : "देवी का बोधन समाप्त होने के साथ ही साथ माँ की गाड़ी ने मठ के प्राँगण में प्रवेश किया। कुछ संगिनियों ने माँ का हाथ पकड़ कर उन्हें गाड़ी से उतारा। सब कुछ देखने के बाद माँ ने प्रसन्न होकर कहा : "सब ठीक ठाक है। मैं मानो दुर्गा की ही तरह एजधज कर आयी हूँ। ....,, अन्य अवसरों पर भी, माँ स्वयं कहती थीं, "श्रीरामकृष्णदेव ने ईश्वर का मातृत्व प्रकट करने के लिए ही मुझे अपने पीछे यहाँ छोड़ दिया। श्रीठाकुर के अन्यतम ईश्वर-कोटि के पार्षद स्वामी प्रेमानन्द ने एक बार बताया था—"वे (श्रीमाँ) तो स्वयं शक्ति स्वरूपिणी हैं, उनमें छिपाने की क्षमता बहुत थी। किन्तु ठाकुर चेष्टा करके भी नहीं छिपा सकते थे। उनके तेज का प्रकाश बाहर प्रकट हो ही जाता था। माँ को भी तो भाव-समाधि होती है—किसी को पता भी चल पाता है ?" श्रीठाकुर ने जो कहा था—"अद्वैत ज्ञान को आँचल में बाँधकर जो इच्छा हो सो करो।"—माँ इसी तत्व को अपने जीवन में रूपायित कर गयीं। यही है व्यावहारिक वेदान्त, जिसका प्रचार स्वामी विवेकानन्द ने किया है।

इस संसार में ईश्वर के अलौकिक मातृत्व को श्रीमाँ ने अपने जीवन मे सदैव ही प्रकट किया है। मानो जगत को मातृभाव की शिक्षा देने के लिए ही श्री सारदा देवी ने शरीर धारण किया हो। उनके भीतर का मातृभाव उसके गुरुभाव से भी अधिक सशक्त और प्रबल था। 'माँ, कह कर पुकार लेने वाले सभी प्रकार के लोगों के लिए वे परमस्नेहमयी, ममता-वत्सल जननी हो जातीं। वे सत् एवं असत् सभी प्रकार की आर्त्त संतानों के लिए करुणाविगलित माँ थीं। 'माँ, की पुकार उनके मन में प्रबल प्रेम की सृष्टि करती थी। जिन्हें एक बार अपनी गोद में उठा लेतीं उन्हें कभी-भी नीचे उतार नहीं सकती थीं। गुरु और माँ दोनों ही रूपों में वे अपनी अबोध संतानों को भवसागर से पार ले जानेवाली तारक ब्रह्म-शक्ति थीं। स्वामी अपूर्वानन्द ने लिखा है : "श्री सारदा देवी के भीतर जो गुरु-भाव का विकास था, वह मानो मातृभाव की ही परिणति थी।" उनके जीवन में सभी के लिए मातृ सुलभ प्रेम ही सर्वोपरि था। अपने चरणों में आश्रय चाहने वाले सभी प्राणियों के लिए उनकी उत्कंठित शुभाशंसा की कोई सीमा नहीं थी।। उनके निकट आनेवाले सभी लोग अपने संबंधियों से कहीं अधिक प्रगाढ़ प्रियता पाकर धन्य हो जाते। तनाव, दुश्चिन्ता एवं संघर्षों से थके-माँदे लोग अपना हृदय उनके समक्ष खोल देते थे। श्रीमाँ भी अपनी ओर से प्रत्येक और सबके लिए अपना प्रेम-प्रसाद बाँटतीं और इसमें श्रेणी, जाति-वर्ण, संप्रदाय, मतवाद या लिंग-भेद के कारण कभी पक्षपात नहीं करतीं। उनका प्रेम आकाश की तरह उदार, सर्वश्लेषी और पूर्ण क्षमाभाव से आपूरित था।

भगवान रामकृष्ण की मानव-लीला के संवरण के बाद तो वह अनुक्षण रक्षाकाली की तरह उनकी प्रणत संततियों की रक्षा करती रहीं। जगत के त्रितापदग्ध प्राणियों के लिए भद्रकाली माँ की तरह लोकमंगल की दिव्य ज्योति बनकर अनवरत सचेष्ट रहीं। जीवंत भवतारिणी की तरह वह भववंधनों का विमोचन करतीं। परमशिव स्वरूप भगवान रामकृष्ण के अन्तर्हित हो जाने पर परमचिति स्वरूपा भवतारिणी होकर जगत की यावत् मणिकर्णिका में त्रितापविदीर्ण आर्त्तों को अथक भाव से तारक मंत्र प्रदान करती रहीं। अँधेरे में भटकते हुए जिज्ञासुओं और जीवन-बोझ से दबे हुए हृदयों के लिए सहज परा विज्ञान और शीतल करुणा का उन्मुक्त वितरण करती रहीं। अपने आश्रितों के हृदय में सनातन आत्मदीप जलाकर उन्हें परम शांति एवं धन्यता प्रदान करती रहीं। जन्म-मरण के गहन चक्र से छुड़ा लेनेवाली विज्ञानमयी-करुणामयी भवतारिणी हैं श्रीमाँ। श्रीमाँ ने स्वयं एक बार एक बड़भागी आश्रित संतान से कहा था—"सदैव तुम्हें स्मरण रखना चाहिए कि निरन्तर तुम्हारे पास कोई एक है।" माँ की गोद मे शिशु निर्भय और निश्चिन्त रहता है। और माँ ने आश्वासन की परम वाणी प्रदान की थी उसी के लिए नहीं, हम सबके लिए, —"मैं तो हूँ ही, फिर भय किस बात का ?" यही तो करुणामयी की अभयवाणी थी। पल-भर में अद्वैत की परम निधि के रूप में उसके एकमात्र महाफल, अभय, की अखंड धन्यता को लुटानेवाली।

स्वामी अभेदानन्द ने 'सारदा देवी स्तोत्रम्' में श्रीमाँ से उनके नित्य चिन्मय चरण-शरण की याचना की है :

"कृपां कुरु महादेवि सुतेषु प्रणतेषु च।
चरणाश्रयदानेन कृपामयि नमोऽस्तु ते।"

अर्थात, "हे महादेवी ! अपने शरणागत पुत्र पर कृपा करो ! हे माँ ! तुम्हें बार-बार नमस्कार निवेदित है। हे करुणामयी ! हे माँ चरणों में आश्रय प्रदान करने की भिक्षा दो !" ◻

भगिनी निवेदिता द्वारा

# श्रीमाँ के नाम एक पत्र

कैम्ब्रिज मास,
रविवार, ११ दिसम्बर, १९१०

प्यारी माँ,

आज प्रातः काल मैं सारा के लिए प्रार्थना करने गिरिजाघर गयी थी। सब लोग यीशु की माता मेरी पर ध्यान कर रहे थे। सहसा मुझे तुम्हारी स्मृति हो आयी। तुम्हारा प्यारा मुख, तुम्हारी स्नेह-पूर्ण दृष्टि, और तुम्हारी सफेद साड़ी—सब कुछ मानो प्रत्यक्ष हो उठा। मुझे एस० लगा कि तुम बेचारी ऐसा सारा के कमरे में उसे शान्ति और आशीर्वाद देने के लिए उपस्थित हो। और—तुम जानती हो?—मैंने साचा कि मैं कितनी मूर्ख थी कि तुम्हारे कमरे में बैठकर श्रीरामकृष्ण देव की सन्ध्या-आरती के समय ध्यान करने की कोशिश करती थी। मैं यह क्यों नहीं समझ सकी थी कि तुम्हारे चरणों के समीप एक छोटी-सी बच्ची के रूप में बैठना ही मेरे लिए पर्याप्त था? ओ माँ! तुम तो प्रेम से परिपूर्ण हो! और यह प्रेम हम लोगों के तथा संसार के उद्दीप्त और प्रबल प्रेम के समान नहीं है। यह एक ऐसी मृदुल प्रशान्ति है जो प्रत्येक का कल्याण करती है तथा किसी के अकल्याण की कामना नहीं करती। यह तो अपार लीलापूर्ण स्वर्णिम आलोक है। कुछ महीने पहले का वह रविवार कितना पुनीत था जब मैं तुम्हारे पास दौड़कर पहुँची थी—जब मैं तुम्हारे पास से गंगा पर गयी थी और फिर तुम्हारे पास धावित हुई थी—तब तुमने मुझे जो आशीर्वाद दिया था उससे तुम्हारे उस प्रेमपूर्ण घर में मुझे अत्यन्त विलक्षण मुक्ति का अनुभव हुआ था। परमप्रिय माँ, मेरी इच्छा होती है कि मैं तुम्हारी प्रशंसा में बहुत सुन्दर स्तुति या प्रार्थना की रचना करूँ। पर मेरा ऐसा करना बड़ा कोलाहलपूर्ण प्रतीत होगा, बहुत तीव्र लगेगा। निश्चय ही तुम भगवान की अत्यन्त विलक्षण रचना हो। तुम श्रीरामकृष्णदेव के संसार के प्रति प्रेम से परिपूर्ण उनका अपना चषक हो। तुम उनकी सन्तानों के अकेले-पन का सहारा हो। तथा हमें कुछ विनोद के क्षणों को छोड़कर तुम्हारे समक्ष अत्यन्त स्थिर एवं शान्त रहना चाहिए। वास्तव में "प्रभु की विलक्षण वस्तुएँ"—वायु और सूर्य का प्रकाश, उपवनों और गंगा की मधुरता—सब कुछ प्रशान्त होती हैं और वे अजाने रूप से हमारे जीवन में चुपचाप प्रवेश करती हैं। ये सभी तुम्हारे समान ही प्रशान्त हैं।

बेचारी एस. सारा को अपनी परम प्रशान्ति की रक्षा-कवच अवश्य प्रदान करना। क्या यह सच नहीं है कि तुम्हारे विचार प्रेम और द्वेष से ऊपर उठकर परम प्रशान्ति के उच्चाकाश में विचरण करते हैं? क्या यह सही नहीं है कि ईश्वर में स्पन्दित होनेवाली मंगल कामना कमल के पत्ते में गिरी हुई ओस की बूँद की तरह होती है तथा वह संसार का स्पर्श नहीं करती?

मेरी प्यारी माँ, सदैव तुम्हारी बुद्धू खूकी,
निवेदिता

□

# नारद-भक्ति-सूत्र

(श्रीरामकृष्णदेव के उपदेशों के संदर्भ में देवर्षि नारद विरचित भक्ति-सूत्र की व्याख्या)

स्वामी वेदान्तानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन आश्रम, पटना

## प्रथम अनुवाक

(पराभक्ति का स्वरूप)

अथातो भक्ति व्याख्यास्यामः ॥१॥

अथ (अब) अतः (इसलिए—भक्ति मार्ग के अधिकारी को भक्ति तत्त्व जानने का इच्छुक समझकर) भक्ति (भक्ति तत्त्व) व्याख्यास्यामः (व्याख्या करूँगा) ॥१

अब भक्तितत्त्व के अधिकारी जिज्ञासु को उपदेश-दान करने के लिए भक्तितत्त्व की व्याख्या करूँगा ॥१

जिसे जिस विषय की जानकारी के लिए श्रद्धा या आग्रह नहीं है, अथवा श्रद्धा एवं आग्रह रहने पर भी जिस विषय की धारणा करने की सामर्थ्य नहीं है, उसे उस बिषय का उपदेश देना व्यर्थ है। ईश्वर की चर्चा सुनना भी सबको अच्छा नही लगता। फिर समय नहीं आने पर सुनने से भी वह किसी काम का नहीं होता है। श्री रामकृष्णदेव ने कहा है "पात्र देखकर उपदेश देना होगा।"

"जिन लोगों का, देखता हूँ कि ईश्वर में मन नहीं है, उनसे मैं कहता हूँ, तुम जरा वहाँ जाकर बैठो। अथवा कहता हूँ—जाओ, बड़ी-अच्छी बिल्डिंग" (दक्षिणेश्वर की रानी रासमणि की कालीबाड़ी के सारे मन्दिर) है, देखो जाकर।"

"फिर देखता हूँ कि भक्तों के साथ कुछ विवेकहीन लोग आये हैं। उन लोगों में भारी बिषय-बुद्धि है। भक्त लोग प्रायः काफी देर तक ईश्वरीय चर्चा करते हैं। इधर ये लोग और ठहर नहीं पाते हैं, छटपट करते हैं। बार-बार कानों में फुसफुसा कर बोलते हैं, 'कब जाओगे, कब जाओगे ?' उनसे ऐसा कहने पर 'ठहरो न, थोड़ी देर बाद जाऊँगा'। तब वे असन्तुष्ट होकर कहते है 'तब तुमलोग बातें करो, हमलोग नाव पर जाकर बैठते हैं।"

"हजार लेक्चर दो, विषयी लोगों का कुछ उपकार कर नहीं पाओगे। पत्थर की दीवार पर क्या कील ठोकी जा सकती है ? कील का माथा टूट जाय तो भी दीवार को कुछ नहीं होगा। तलवार से चोट करने पर घड़ियाल का क्या होगा ?

"हजार शिक्षा दो, समय नहीं होने पर फल नहीं होगा। बच्चे ने बिछावन पर सोने के समय माँ से कहा 'माँ, मुझे जब पाखाना लगे तब तुम मुझे उठा देना।' माँ ने कहा, 'बेटा, पाखाना ही तुम्हें उठा देगा, इसके लिए कुछ चिन्ता मत करो।' इसी तरह भगवान के लिए व्याकुल होने का उपयुक्त समय होने पर ही होता है।"

कौन-सा गुण रहने पर मनुष्य भक्ति की बात सुनने के लिए, भक्ति-लाभ के लिए अधिकारी होता है ? ज्ञान, योग आदि साधना पथों के अधिकारी को शारीरिक, मानसिक आदि विभिन्न गुणों से सम्पन्न होना पड़ता है, किन्तु भक्ति-लाभ के लिए केवल आन्तरिक व्याकुलता, ऐकान्तिक आग्रह रहने से ही हो गया। श्रीरामकृष्णदेव ने एक दिन एकत्र तरुण भक्तों को कहा था, "यहाँ अन्य कोई नहीं है; इसी से तुमलोगों से कहता हूँ; आन्तरिक

भाव से ईश्वर को जो जानना चाहेगा, उसे ही होगा, निश्चय ही होगा। जो व्याकुल, ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, उसे ही होगा।"

"जब तक भोग-वासना रहती है, तब तक ईश्वर को जानने या दर्शन करने के लिए प्राण व्याकुल नहीं होते। बच्चा खेल में भूला रहता है। सन्देश (मिठाई) देकर भुलाओ तो थोड़ा सन्देश खायेगा। जब खेल भी अच्छा नहीं लगता, तब कहता है, 'माँ के पास जाऊँगा,' सन्देश नहीं चाहता। जिसे पहचानता नहीं, जिसे कभी देखा तक नहीं, वह भी यदि कहे, 'आओ माँ के पास ले जाता हूँ,' – उसके साथ ही जायगा। जो गोद में उठा कर ले जायगा, उसी के साथ जायगा।

सांसारिक भोग कर लेने के पश्चात् ईश्वर के लिए प्राण व्याकुल होते हैं। कैसे उन्हें पाऊँगा, केवल यही चिन्ता होती है। जो कोई जो कुछ कहता है, वही सुनता है।"

महर्षि शाण्डिल्य ने कहा है – 'आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते'। भक्ति में जाति, वर्ण, विद्या, वय, के बिना विचार के सबका अधिकार होता है। शास्त्रों में इसके असंख्य दृष्टान्त पाये जाते हैं।

किस प्रकार व्यक्ति भक्तियोग का आश्रय लेकर साधना करेगा उसका लक्षण श्रीकृष्ण बताते हैं –

**यदृच्छया मत्कथादौ जातश्रद्धस्तु- यः पुमान्।**
**न निर्विन्नो नातिसक्तो भक्तियोगस्य सिद्धिदः॥**

(भा० ११/२०/८)

'सौभाग्यवश किसी प्रकार जिस व्यक्ति में मेरी कथा आदि में श्रद्धा उत्पन्न हो गयी है, जिसमें तीव्र वैराग्य नहीं उत्पन्न हुआ है, फिर विषयों में भी विशेष आसक्ति नहीं है, भक्तियोग का आश्रय ग्रहण करने पर उसे सिद्धि-लाभ होगा।'

और इस भक्ति-साधना के लिए समय तथा वय की अपेक्षा नहीं करनी होती। भक्तराज प्रह्लाद अपने साथी दैत्य बालकों से कहते हैं –

**कौमार आचरेत् प्राज्ञो धर्मान् भागवतानिह**
**दुर्लभं मानुषं जन्म तदप्यध्रुवमर्थदम्॥**

(भा० ७/६/१)

'बुद्धिमान व्यक्ति को बचपन से ही भक्ति-धर्म का अनुशीलन करना चाहिए। एक तो मनुष्य जन्म ही दुर्लभ है, उस पर सार्थक जीवन तो और भी दुर्लभ है'।

सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा॥२॥

सा (वह भक्ति) तु (किन्तु) अस्मिन् (इस परमेश्वर में) परमप्रेमरूपा (ऐकान्तिक प्रेमस्वरूपा)॥२॥

अन्य किसी वस्तु के ऊपर नहीं, बल्कि एकमात्र परमेश्वर के ऊपर ऐकान्तिक प्रेम को भक्ति कहते हैं॥२॥

मनुष्य-मनुष्य के बीच जितने प्रकार के प्रेम-सम्बन्ध होते हैं उन सब में पति-पत्नी का प्रेम सब की अपेक्षा गहन और गम्भीर होता है। उसे साधारणतः प्रेम का नाम दिया जाता है। किन्तु भगवान के प्रेम से उस प्रेम की तुलना ही नहीं हो सकती है। इसी से भक्ति की संज्ञा का निर्देश करने के लिए देवर्षि ने उसके साथ 'परम' विशेषण का प्रयोग किया है। और वह अनुगम्य है। वाक्यों के द्वारा उसके स्वरूप को ठीक-ठीक व्यंजित करना सम्भव नहीं है, इसीसे प्रेम के साथ 'रूप' का प्रयोग कर समझाने की वे चेष्टा करते हैं। साधना का आश्रय लेने पर ईश्वर के अनुग्रह से साधक के हृदय में इस शुद्धाभक्ति का आविर्भाव होता है। "प्रेम का अर्थ है ईश्वर से ऐसा प्रेम कि संसार विस्मृत हो जाय, फिर अपनी देह, जो इतनी प्रिय है, उसका भी विस्मरण हो जाय।" "प्रेम रज्जुस्वरूप है। प्रेम होने से भक्त के निकट ईश्वर बँध जाते हैं, और निकल कर भाग नहीं पाते।"

आत्मा की आत्मा अन्तर्यामी ही जीव की भक्ति का आस्पद है। नारद उनके विषय में केवल 'अस्मिन्'— 'इसमें' कहकर ही सन्तुष्ट हो गये – कोई नाम या संज्ञा नहीं दी। वे साकार या निराकार हैं, सगुण या निर्गुण हैं यह सब कुछ नहीं कहा। साधक की रुचि, संस्कार आदि के अनुसार प्रेमास्पद का स्वरूप उनके हृदय में स्वतः प्रकाशित होगा। प्रेम के साथ तीन वस्तुएँ हैं— प्रेमी, प्रेमास्पद और प्रेम का बन्धन। प्रेमी और प्रेमास्पद के बीच अनुभूत सारे व्यवधानों के नष्ट होने पर – अभेद-ज्ञान में प्रेम की परिसमाप्ति होती है।

"भगवान के प्रति प्रेम दुर्लभ वस्तु है। पहले पत्नी की जिस प्रकार पति के प्रति निष्ठा होती है वैसी ही निष्ठा यदि ईश्वर के प्रति हो, तभी भक्ति होती है। श्रद्धा-भक्ति का होना बड़ा कठिन है। भक्ति में प्राण-मन ईश्वर में लीन हो जाते हैं।

प्रेम होना बहुत दूर की बात है। ईश्वर में प्रेम होने पर बाहर की वस्तुएँ विस्मृत हो जाती हैं। अपनी देह, जो इतनी प्रिय वस्तु है, वह भी भुला जाती है।"

"जिस-तिस तरह से भक्ति करने से ही ईश्वर को नहीं पाया जाता। प्रेमाभक्ति नहीं होने पर ईश्वर-प्राप्ति नहीं होती। प्रेमाभक्ति का एक अन्य नाम रागात्मिका भक्ति है। प्रेम या अनुराग नहीं होने पर भगवान की प्राप्ति नहीं होती। ईश्वर के ऊपर प्रीति नहीं होने पर उन्हें पाया नहीं जाता। संसार-बुद्धि चली जाय और पूरी तरह प्रभु के ऊपर सोलहो आने मन हो, तभी उन्हें पाओगे।"

"भक्ति के द्वारा ही उनका दर्शन होता है; किन्तु, पक्की भक्ति, प्रेमाभक्ति, रागानुगा भक्ति चाहिए। ऐसी भक्ति के होने पर ही उनके ऊपर प्रेम आता है, जैसा बच्चे का माँ के प्रति प्रेम होता है, स्त्री का पति के प्रति प्रेम होता है वैसी भक्ति होने पर ही ईश्वर के प्रति प्रेम उपजता है। एक गीत में है—'प्रभु, बिना प्रेम के यज्ञ-याग कर, क्या तुमको जाना जा सकता? यही अनुराग, यही प्रेम यही पक्की भक्ति, यही प्रीति यदि एक बार हो तो साकार-निराकार दोनों का ही साक्षात्कार होता है।"

इसी प्रेमाभक्ति को प्राप्ति के लिए साधना की आवश्यकता होती है। "और एक प्रकार की भक्ति है। उसका नाम बैधी भक्ति है। इतने जप करने होंगे, उपवास करने होंगे, तीर्थों में जाना होगा, इतने उपचारों के साथ पूजा करनी होगी—यह सब बैधी भक्ति है। यह सब काफी करते-करते क्रम से रागानुगा भक्ति आती है। किन्तु, रागानुगा भक्ति जब तक नहीं होगी तब तक ईश्वर-लाभ नहीं होगा। उनके ऊपर प्रेम चाहिए।

"किन्तु किसी-किसी को रागानुगा भक्ति अपने आप होती है। स्वतः सिद्ध। बचपन से ही होती है, बचपन से ही वह ईश्वर के लिए रोता है। जैसे प्रह्लाद ·····।"

"भक्ति के द्वारा ही उनका दर्शन होता है, भाव-समाधि में रूप-दर्शन होता है और निर्विकल्प समाधि में अखण्ड सच्चिदानन्द का दर्शन होता है—तब अहंकार नाम, रूप नहीं रहते। वह भक्ति आने पर माँ जैसे बच्चे को, बच्चा जैसे माँ को और स्त्री जैसे पति को प्रेम करती है वैसा ही प्रेम आता है। इस प्रेम, इस रागानुगा भक्ति के आने पर स्त्री, पुत्र और आत्मीयजनों के ऊपर माया का वह आकर्षण नहीं रह पाता; केवल दया रहती है। संसार एक कर्म-भूमि की तरह लगता है, जैसे विदेश हो। ईश्वर के प्रति प्रेम होने पर संसार की आसक्ति और विषय-बुद्धि पूरी तरह चली जाती है।"

"ईश्वर पर खूब प्रेम नहीं होने से प्रेमाभक्ति नहीं होती। प्रेमाभक्ति का लक्षण अपने आप भक्ति होना, बिना संस्कार के नहीं होता। ज्ञानभक्ति विचार के द्वारा भक्ति करने को कहते हैं। तीन बन्धुओं ने वन में जाते-जाते एक बाघ को देखा एक व्यक्ति ने कहा, 'भाई, इस बार हमलोग मरे।' दूसरे व्यक्ति ने कहा, मरेंगे क्यों, हमलोग ईश्वर को पुकारें तीसरे व्यक्ति ने कहा, 'आओ, हमलोग इस पेड़ पर चढ़ जाते हैं, झूठ-मूठ भगवान को कष्ट देने की क्या जरूरत है?' जिसने कहा, 'इस बार हमलोग मरे', वह यह नहीं जानता कि ईश्वर ही हमलोगों की रक्षा करते हैं। जिसने कहा, 'ईश्वर को पुकारें' वह हुआ ज्ञानी। उसे यह बोध है कि वे ही सृष्टि, स्थिति, प्रलय, सब करते हैं। और जिसने कहा, 'आओ, हमलोग इस पेड़ पर चढ़ जाते हैं, उन्हें कष्ट देकर क्या होगा'—उसके भीतर प्रेम का अभ्युदय हुआ है। प्रेम का स्वभाव ही यही है कि व्यक्ति अपने को बड़ा और प्रियपात्र को अपने से छोटा मानता है। अन्यथा उसे कष्ट होता है। जिसे प्रेम करता है उसके पाँव में काँटा तक न चुभे, केवल यही उसकी इच्छा रहती है।"

इस प्रकार भक्ति-लाभ उत्तम भक्त के भाग्य में घटित होता है। श्रीमद्भागवत में विभिन्न श्रेणियों की भक्ति का लक्षण इस प्रकार बताया गया है: 'सभी प्राणियों में जो अपना और भगवान का दर्शन करते हैं और सभी प्राणियों को ईश्वर के भीतर तथा अपने भीतर देखते हैं वे उत्तम भक्त हैं। ईश्वर के प्रति जिनको प्रेम एवं भक्तों के साथ जिनका मैत्री भाव है, अज्ञानियों पर जिनकी कृपा रहती तथा ईश्वर विद्वेषियों की जो उपेक्षा करते हैं—वे मध्यम भक्त हैं। जो श्रद्धापूर्वक प्रतिमा आदि में ईश्वर की उपासना करते, किन्तु, भक्तों एव अन्य प्राणियों की सेवा नहीं करते, वे साधारण भक्त हैं।'

सर्वभूतेषु यः पश्येद् भगवद्भावमात्मनः।
भूतानि भगवत्यात्मन्येष भागवतोत्तमः॥
ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च।
प्रेम मैत्री कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः॥
अर्चायामेव हरये पूजां यः श्रद्धयेहते।
न तद्भक्तेषु चान्येषु स भक्तः प्राकृतः स्मृतः।

(भा० ११-२-४५-४७)

मध्यम और अधम अधिकारी के लिए साध्य भक्ति या गौणी भक्ति का विधान है। गौणी भक्ति के लक्षणों और साधनों का बाद में वर्णन होगा। (क्रमशः)

□

क्रिसमस के अवसर पर

# ईश्वरावतार यीशु

—ब्रह्मचारी वरदा चैतन्य
(रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, पुरुलिया)

२५ दिसम्बर। अमृतपुरुष यीशु का जन्म-दिवस।

जो महामानव आज से दो हजार वर्ष पूर्व संसार में शान्ति और प्रेम की वाणी को वहन कर आये थे, जिस अलौकिक पुरुष के आविर्भाव से सारी पृथ्वी ने आध्यात्मिकता के महाप्लावन से उर्वर होकर अगनित सिद्ध-साधकों को जन्म दिया है, जीवन-युद्ध में पराजित सैकड़ों-हजारों अशान्त हृदयों को जिनकी अमृतवाणी ने दिया है शान्ति का स्निग्ध प्रलेप, आज के इस पुण्य लग्न में उन्हीं 'परम पुरुष' ईश्वरावतार यीशु को अर्पित हैं हमलोगों के भक्तिपूत विनम्र प्रणाम।

अज्ञान और अधर्म की अन्ध तमिस्रा की गहन रात में हुआ था यीशु का आविर्भाव। यहूदी जाति के चरम दुर्दिन में परम कारुणिक श्रीभगवान ने फिर एकबार धर्म को अधर्म की ग्लानि से मुक्त कर संसार में धर्म की प्रतिष्ठा करने के लिए मानवपुत्र के रूप में यीशु को भेजा था जेरूजेलम के बेथलहम नगर में। मानव जाति के त्राणकर्त्ता के पुण्य आविर्भाव के उसी माहेन्द्र क्षण को आज भी विश्ववासी स्मरण करते हैं परम श्रद्धा के साथ, परम निष्ठापूर्वक।

पृथ्वी के धर्म-इतिहास में आज तक जितने अवतार पुरुषों ने जन्म ग्रहण किया है उनमें प्रत्येक आविर्भाव की पटभूमिका सभी क्षेत्रों में एक ही रही है। अयोध्यापति श्रीरामचन्द्र, पार्थसारथि श्रीकृष्ण, विशाल हृदय बुद्ध, अमृत पुरुष यीशु, प्रेमावतार श्री चैतन्य एवं सर्वधर्म-समन्वय के प्रवाद पुरुष श्रीरामकृष्ण—ये सब मोटे तौर पर एक निर्दिष्ट समय के अन्तराल पर ईश्वर के प्रतिनिधि के रूप में आये हैं अधर्म के राहुग्रास से सनातन धर्म की रक्षा करने। यीशु के आविर्भाव-काल में भी प्राकृतिक नियमों के अनुसार ही यहूदी जाति में अधर्म का अशुभ अभ्युत्थान दिखाई पडता था। धर्म के नाम पर व्यवसाय करना, अर्थ लोलुप पुरोहितों द्वारा धर्मभीरु मनुष्यों को अन्याय में पीसना, दुर्बल, असहाय, वंचित मनुष्यों का सबल व्यक्तियों द्वारा उत्पीड़न, धर्म के प्रकृत सत्य को छोड़कर व्यर्थ के आचारों-अनुष्ठानों को लेकर उन्मत्त रहना—यही थी उन दिनों की सामाजिक अवस्था।

यहूदी जाति की इस सामाजिक पटभूमिका में यीशु एक विद्रोही के रूप में आविर्भूत हुए। तथाकथित पण्डितों-दार्शनिकों के दल ने शास्त्रों की विकृत व्याख्या कर धर्म को धूमिल कर दिया था, साधारण मनुष्यों के लिए दुर्बोध्य कर दिया था। युग-युग में अवतारगण आते हैं इन साने पंडित-मूर्खों के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा करने। धर्म को वे पहुँचा देते हैं प्रत्येक मनुष्य के समीप। धर्म को वे कर देते हैं प्रत्येक जीवन का अंगीभूत।

रामकृष्ण, बुद्ध, यीशु, हजरत मोहम्मद आदि अवतार पुरुषगण किन्तु, किसी भिन्न ग्रह के जीव नहीं थे। सामान्य से ही वे हुए असामान्य। दुर्लभ को उन्होंने सुलभ कर दिया। वे हमलोगों की तरह ही आते हैं रक्त-मांस का शरीर धारण कर। मनुष्य के देश में, मनुष्य की भाषा में बता जाते हैं अमृत धाम में पहुँचने का सहजतम मार्ग। प्रतिदिन 'वृथा दिन-यापन की, वृथा प्राण-धारण की ग्लानि' मानव-जीवन को जब दुर्वह कर देती है, पथभ्रान्त, त्रिताप के दुःख से तापित असहाय मानव जब हताशा और निराशा के अतल गह्वर में समाहित होकर जीवन की सारी स्फूर्तियों को खो बैठता है—उसी चरम मूहुर्त में कोई दिव्य पुरुष सत्य के आलोक से उद्भासित होकर सुनाते हैं

परम आश्वासन से भरी वाणी—'वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् । आदित्य वर्णं तमसः परस्तात् ॥' अर्थात् स्वप्रकाश से युक्त और अज्ञान से रहित उस सर्वव्यापी महान् पुरुष को मैं जानता हूँ ।

यीशु ख्रीष्ट ने उसी अज्ञान से युक्त ज्योतिर्मय पुरुष का संधान-लाभ किया था । अवतार-पुरुषगण हुए उसी श्रेणी के जो, श्रीरामकृष्ण की भाषा में, आम खाकर मुँह पोंछकर बैठ नहीं रहते; दूसरों को भी उसका सुमधुर स्वाद ग्रहण कराने को व्यग्र होते हैं । दीवार के उस पार का आनन्द देखकर हा-हा कर हँसते हुए उसी ओर कूद नहीं पड़ते बल्कि इस पार के लोगों को भी उस पार के रहस्य की खबर दे जाते हैं । यीशु मसीह थे इसी श्रेणी के पुरुष । अमृतत्त्व का पथ जानकर संसार वासियों का आह्वान उन्होंने किया था—'Come unto me, all ye that labour and are heavy laden, and I will give you rest." अर्थात् संसार के श्रम और बोझ से दबे थके हुए ओ मनुष्यो, तुम सब मेरे पास आओ, मैं तुम्हें विश्राम दूँगा ।

हाय, हतभाग्य मानव ! स्वार्थ और आसक्ति के प्रबल वशीभूत हो वह प्रभु का आह्वान सुन नहीं पाता । वे हमारे द्वार पर आकर खड़े हैं आमंत्रण स्वीकार करने की अपेक्षा लेकर—'Behold, I stand at the dor and knock if any man hear my voice and open the door, I will come unto him and will sup with him, and he with me.' देखो मैं दरबाजे पर खड़ा हूँ और द्वार खटखटा रहा हूँ, यदि कोई आदमी मेरी आवाज सुने और द्वार खोले तो मैं उसके पास आऊँगा और उसके साथ भोजन करूँगा और वह मेरे साथ जीमेगा ।

हृदय को उन्मुक्त कर जो उनका स्वागत करते हैं वे ही अधिकारी होते हैं परम शान्ति के; स्वार्थ संघातमय जीवन की मलिनता से मुक्त हो उनके महाजीवन के महान् स्तर में एक उच्चता और दिव्यता का अवतरण घटित होता है ।

यीशु आये थे मानव को उसी अनन्त का अधिकारी बनाने, परम शान्ति के पथ की पहचान कराने । वे बता गये कि किस प्रकार उस चरम उद्देश्य के लक्ष्य तक पहुँचा जा सकता है । वे कह गये—प्रभु से प्रेम करना होगा । रुपये-पैसे, मान-यश, विषय-वैभव—इन सब तुच्छ वस्तुओं के प्रति प्रेम करना तो हमलोगों में जन्मजात है, हललोगों का प्रकृतिगत भाव है, किन्तु, इन सब पार्थिव वस्तुओं से परे जो एक अतीन्द्रिय सत्ता वर्तमान है, जो हमलोगों के 'प्राणस्य प्राणः चक्षुश्चक्षुः श्रोत्रस्य श्रोत्रः' हैं उन्हीं परम पुरुष के प्रति हमलोगों को प्रीति करनी होगी । कारण यह है कि वे हमलोगों के परम पिता हैं, वे हमलोगों के महादुःखों के परित्राता हैं । हम सब उसी परम पिता की सन्तान हैं । 'We are the children of our Father.' इसी से यीशु ने कहा है, जिनके साथ हमलोगों का जन्म-जन्मान्तर का सम्बन्ध है उनसे प्रेम करना ही हमलोगों के जीवन का उद्देश्य है ।

'And thou shalt love thy Lord thy God with all thy heart and with all thy soul and with all thy mind and with all thy strength.' यानी, तुम अपने प्रभु को, अपने ईश्वर को, अपने समग्र चित्त से, अपनी पूरी आत्मा से, अपने पूरे मन से और अपनी समस्त शक्ति से प्यार करोगे । यीशु की यह वाणी सभी अवतारों की ही वाणी की हू-ब-हू प्रतिध्वनि है ।

असली बात यह है कि हमलोगों को ईश्वर को चाहना होगा । जीवन में उनके अभाव को अनुभव करना होगा । क्योंकि वे तो हमलोगों के दरबाजे पर अपेक्षा कर रहे हैं हमलोगों के द्वारा आह्वान की । 'Ask and it shall be given unto you, seek and you shall find; knock and it shall be opened unto you. For everyone who asks, receives; and who seeks, finds; and to him who knocks it shall be opened.' 'याचना करो, और तुम्हें प्रदान किया जायगा; ढूँढ़ो, और तुम उपलब्ध करोगे; खटखटाओ, और तुम्हारे लिए द्वार खुलेगा क्योंकि ऐसा हर व्यक्ति जो माँगता है, वह प्राप्त करता है, और जो ढूँढ़ता है, वह पाता है, और

जो खटखटाता है उसके लिए द्वार निश्चय ही खुलेगा।—' यह हुई ईश्वर-प्राप्ति की मर्म-कथा। व्याकुल होना होगा। धर्म के लिए, सत्य के लिए इस जीवन का सर्वस्व—धन, मान, देहसुख, सब का, सर्वस्व का त्याग करना होगा। हिन्दू, बौद्ध, इस्लाम सभी धर्मों की ही यही एक कथा है। सत्य-लाभ का यही मूल्य मन्त्र है—त्याग। 'त्यागेनैक अमृतत्वमानशुः।'—एकमात्र त्याग द्वारा ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है। 'You can not serve God and Mammon.' तुम ईश्वर और धन की एक साथ उपासना नहीं कर सकते।'—यीशु मशीह ने कहा था। यह केवल बात नहीं है, यह जीवन में अनुशीलन करने की वस्तु है। यीशु का जीवन इसी त्याग और वैराग्य का महिमामय जीवन है। उन्होंने स्वयं अपने श्रीमुख से कहा है—'The foxes have holes and the bird in the air have nests, but the son of man hath not where to lay his head.' लोमड़ियों को माँदें हैं और पक्षियों को आकाश में घोंसले हैं, लेकिन मानव के पुत्र (प्रभु के भक्त) को सिर टिकाने के लिए भी कहीं जगह नहीं है।' उस मानव सम्राट को माथा टिकाने के लिए एक छोटी-सी जगह भी नहीं थी।

हमलोग कभी-कभी धैर्य खोकर मूर्ख की भाँति प्रश्न करते हैं, 'वे हैं तो दिखाई क्यों नहीं देते हैं? इतने जप-तप, व्रत-अनुष्ठान, इतने साधु-संग, मन्दिर-मन्दिर में इतना सिर घुसाना, तब भी क्यों नहीं होता है ईश्वर का दर्शन? किसका अभाव रहता है? इस प्रश्न के उत्तर में यीशु ने कहा है,—'One thing thou lackest; go thy way, soll whetsoever thy hast, and give to the poor and thou shalt have treasures in heaven; and come.....and follow me.' एक चीज की कमी है तुम में तुम अपनी राह जाओ, जो कुछ भी तुम्हें है उसे बेंच डालो और गरीबों में उन्हें बाँट दो, और तुम्हें स्वर्ग में वैभव मिलेगा; और आओ···और मेरा अनुसरण करो।'

यीशु अपने उपदेशों के अनुसार अपना जीवन यापन करते थे। त्याग, प्रेम और पवित्रता के वे थे मूर्त्त विग्रह। जिस क्षमा के आदर्श का उन्होंने प्रचार किया था उस क्षमा का गुण किस अपरूप भाव से उनके जीवन के अन्तिम लग्न में फूट पड़ा था! जिनलोगों ने परम शत्रुता से, परम विश्वासघातकता के साथ उनका चूड़ान्त अपमान किया था, उन्हें निदारुण शारीरिक यंत्रणा दी थी उनके लिए अन्तिम क्षण तक ईश्वर से उन्होंने करुणा की भीख माँगते हुए प्रार्थना की थी—'हे पिता! हे स्वर्गस्थ पिता, ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं, तुम इन्हें क्षमा करो।' यीशु के जीवन और वचनों की यही थी अन्तिम कथा। ●

## । श्रीसारदा जन्मोत्सव ।

**खेतड़ी** :—रामकृष्ण मिशन, विवेकानन्द स्मृति मन्दिर, खेतड़ी (राजस्थान) द्वारा श्रीमाँ सारदा देवी का १३१वाँ जन्मोत्सव विवेकानन्द स्मृति मन्दिर में २६ दिसम्बर को मनाया जायगा जिसमें मंगल-आरती, प्रार्थना, वेद-पाठ, भजन, पूजा, चण्डीपाठ, तथा संध्या आरती के उपरान्त श्रीमाता जी के जीवन पर प्रवचन होंगे।

**बीकानेर** :—श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर द्वारा २५ एवं २६ दिसम्बर को श्रीसारदा जन्मोत्सव मनाया जायगा। २५ दिसम्बर को श्रीसारदा महिला समिति के तत्त्वावधान में केवल महिलाओं के लिए एक महिला-सभा का आयोजन होगा जिसमें श्रीमाताजी के जीवन एवं शिक्षाओं पर व्याख्यान तथा भजन होंगे। २६ दिसम्बर को विशेष पूजा, प्रार्थना तथा स्तोत्र-पाठ का आयोजन होगा। रात्रि ७ बजे, उसी दिन भजन एवं प्रबोधन का भी कार्यक्रम सोल्लास सम्पन्न होगा।

सन् १९८४ ई० में २४ जनवरी को स्वामी विवेकानन्द जयन्ती, ४ मार्च को भगवान श्रीरामकृष्ण जयन्ती तथा १५ दिसम्बर को श्रीमाँ सारदा देवी की जयंती श्रीरामकृष्ण कुटीर, बीकानेर द्वारा मनायी जायेगी।

१. प्रत्येक एकादशी को श्रीरामनाम संकीर्तन होगा और जयंती उत्सव पर व्याख्यान एवं संगीत का विशेष कार्यक्रम होगा।

२. श्रीसारदा महिला समिति की सभा का कार्यक्रम केवल महिलाओं के लिए एकान्तर रविवार को होगा।